चट्टान पर नींव डालने वाला

-साजू-

प्रकाशक
सांक्चुरी वर्ड मीडिया प्रा. लि.
कोचीन, केरल

Chattan Par Neev Daalne Vala
Paramel Adisthanamidunnavan (Malayalam) by
Saju

Translated by :
Anil J Abraham

First Edition
June 2011

Published by
Sanctuary Word Media Pvt. Ltd.
26/150 A, 2nd Floor, Avees Building,
Toll Jn.,Edappally, Kochi-682024
Ph. 0484 2557606

Printed by:
Graphic Systems &Co.,
Mallappally
Ph. 0469-2782260, 2785522

Copies Available At:
Sanctuary Books,
Bilaspur-1, CG
Ph. 9425549016

Margam Books,
Gwalior, MP
Ph. 9425774002

Price: 50/- Only

आमुख

गत पच्चीस वर्षों के आत्मिक जीवन की ओर मुड़कर देखूँ तो एक सवाल उठता है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता-

वह क्या है जिसने मुझे स्थिर बनाये रखा?

कभी भी मैं एक आत्मिक महामानव नहीं रहा।

डायरी लिखने लायक बड़ी उपलब्धियाँ भी नहीं थी।

बहुत सारी लज्जाजनक यादें भी हैं।

फिर भी मैं अब भी विश्वास में ही हूँ।

अतंत: इसे परमेश्वर का अनुग्रह नहीं तो और क्या कहूँ।

फिर भी मेरा विश्वास है कि इन सबमें वचन का एक अहम् स्थान है।

जैसा इस पुस्तक में बताया गया है, यदि मुझे देहधारण करने वाले शाश्वत वचन ने मुझे उद्धार दिया तो उसमें बनाये रखने वाला लिखित वचन है।

1974 के वे दिन जब मैं उद्धार के अनुभव में आ रहा था।

अर्थात् मैं मसीह की ओर आकर्षित हुआ।

किन्तु उन दिनों मुझे उद्धार के गहरे सिद्धांत की बहुत अधिक जानकारी नहीं थी।

एक सभा के दौरान मैंने संचालकों से पूछा था:

"आप लोग इतने आनंदित कैसे हैं?"

उन्होने बहुत कुछ कहा।

पर मैं मुँह फाड़े खड़ा उन्हे देखता रहा क्योंकि उनकी आत्मिक भाषा मुझे समझ में नहीं आयी थी।

(उन दिनों मैं मात्र एक हाई स्कूल विद्यार्थी ही था।)

किन्तु उन्होने मुझे सलाह दिया: बाईबल पढ़ना।

मैं ने वही किया।

दो तीन महीनों में ही मैंने लगभग पूरा ही पढ़ डाला। एक अजीब सी भूख थी।

वह मेरे लिए अमृत समान थी। मेरा 'छुटकारा' हुआ।
अपने विश्वास को मैं ने वचन में दृढ़ किया।
वह मेरे पांव के लिए दीपक और मेरे मार्ग के लिए उजियाला बन गया।
वह मेरे मुँह में मीठा, और पेट में ठंडा लगा।
हृदय में आग बन गया, आँखें में प्रकाश बन गया...

मेरा समाज वचन को बहुत स्थान देने वाला था।
हर प्रार्थना सभा में बाईबल लेकर जाने वाले लोग...
प्रति दिन के वचन पठन को महत्व देने वाले लोग...!
किन्तु कुछ दिन बीतने पर मुझे लगा,
मेरे समाज के लिए वचन शब्द मात्र हैं।
वे उसमें से सड़े हुए सिद्धांत बनाना ही जानते हैं। जीवन बनाना नहीं।
वचन की आत्मा नष्ट होती है।

मैं ने कहा: हे प्रभु, मेरे साथ यह दुर्घटना नहीं होनी चाहिए।
मुझे वचन को उसके ही अर्थ में जानना है।
कई वार्षिक सुसमाचार सभाओं में बैठ कर मैं ने प्रार्थना की:
प्रभु, काश कि इस साल पवित्रात्मा मुझे वचन सिखाये।
मुझे सभी सत्य की ओर ले चल।

जब पवित्रात्मा मुझे लिये चला तब मैने जाना: सत्य बहुत ही मूल्यवान है।
मूल्य तो चुकाना ही होगा: कई बातें छोड़नी होंगी।
स्वीकृति, अधिकार, आत्म प्रेम, आत्म सुख...वगैरह.....वगैरह....
छोड़ना मेरे लिए आसान नहीं था...आज भी नहीं है।
लेकिन जब जब ऐसा किया तब तब इस तीर्थ यात्रा के मार्ग में रोड़े आते रहे।

यह पुस्तक उन आत्मिक सत्यों का विवरण नहीं है जो परमेश्वर ने मुझे सिखाये।
बल्कि यह निर्देश है कि परमेश्वर आपको वचन से सिखाना चाहता है और
यह प्रार्थना भी कि अपने आप को इसके लिए सौंप प्रभु के हाथों सौंप देना!
और वचन में लौट जाने का एक आह्वान भी! बस इतना ही है यह पुस्तक!

मैं ने यह पुस्तक साधारण लोगों के लिए लिखा है-
बहुत ही साधारण लोगों के लिए।
इसी कारण मैं ने एक नई भाषा शैली का ही विकास करने का प्रयास किया है।

आत्मिक सत्यों को कथाओं और अनुभवों में लपेटकर
यथासंभव सरल करने का प्रयास किया हूँ।
कहानियाँ काल्पनिक हैं परन्तु अनुभव वास्तविक हैं।
सरलीकरण की इस प्रक्रिया में कई बाईबल संदर्भों का सहारा भी लिया गया है।

मैं ने कहा न...यह वचन का टीका नहीं है।
वचन में, बाईबल में, उसकी आत्मा में
प्रवेश करने का एक आह्वान है।
हमें सत्यों को-स्वतंत्रता देने वाले सत्यों
की ओर चलने की जरूरत है।
भले की इसके लिए कुछ भी कीमत चुकाना पड़े।

आपका,

साजू

e-mail: saju@btsi.org
visit: www.btsi.org/jesusmission
www.sjmathew.com

Valiya Vattappara House
Kurrianoor P.O, Tiruvalla
Kerala - 689550

इस पुस्तक में....

1. वचन पर नींव डालने वाला..... 1 - 5

2. वचन देहधारी हुआ.....6 - 10

3. अच्छी भूमि पर गिरा बीज.....11 - 16

4. वचन में आनंदित हों.....17 - 20

5. वचन का पठन और मनन.....21 - 28

6. कान खोदना.....29 - 35

7. वचन Vs पाप.....36 - 45

8. नम्रता की आत्मा.....45 - 50

9. परम्पराएँ और प्रथाएँ..... 51- 61

10. वचन बनाम स्वतन्त्रता.....62 - 72

11. सरल सुन्दर.....73 - 78

12. वचन की व्याख्या और पवित्रात्मा..... 79- 98

13. आईना देखने वाले..... 99 - 107

14. आत्मा की शक्ति से आज्ञापालन की ओर.....108 - 112

15. जागृति का वातावरण..... 113 - 118

1 चट्टान पर नींव डालने वाला

बैंक अफसर राज की पारिवारिक जिंदगी बहुत ही खुशनुमा थी। पत्नी रजनी एक कॉन्वेट स्कूल में शिक्षिका थी पर नन्हें अमन की पैदाईश के साथ ही उसने नौकरी को अलविदा कह दिया था। उसके बाद ही उनके परिवार में नन्हीं तान्या का आगमन हुआ था।

अचानक ही सबकुछ उलट पलट हो गया था। अनचाहे मेहमान के रूप में आया गर्भाशय का कैंसर जब प्रकट हुआ तब अपने तीसरे चरण में पहुँच चुका था। चिकित्सकों का कहना था कि अब कुछ भी नहीं किया जा सकता था। वह घर जहाँ स्वर्ग के समान खुशियाँ नाचा करती थी वहाँ शमशान का सा सन्नाटा पसरा रहता था।

बैंक के चपरासी रमेश ने राज को शहर में होने जा रहे कन्वेन्शन के बारे में बताया था। चंगाई का वरदान प्राप्त परमेश्वर का एक दास बाहर से आ रहे हैं। सब धोखा है, इस प्रकार के सम्मेलनों के विषय राज का विचार यही था। पर अब रजनी की संकट की इस दशा में उसने इस धोखे को भी एक बार आजमाने का मन बना लिया।

कुछ भी हो उस सभा के दौरान ही रजनी ने अद्‌भुत स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया। राज और रजनी दोनों को ही यह अहसास हुआ कि सच्चा परमेश्वर प्रभु यीशु मसीह ही है। इसी कारण वह परिवार यीशु का विश्वासी बना था।

राज के निमंत्रण के कारण ही उसके मामा की लड़की रेणु कलीसिया की उस उपवास प्रार्थना सभा में सम्मिलित हुई थी। रेणु का विवाह हुये तीन वर्ष भी नहीं हुआ है और ऐसा लगता है जैसे पति ने उसे और एक वर्ष के बच्चे को छोड़ दिया हो। अभी वह एक दूसरी लड़की के साथ किराये के मकान में रहते हैं। रेणु ने एक बोतल जहर ख़रीद कर रख्रा हुआ है। बच्चे को जहर देकर और ख़ुद भी जहर ख़ाकर मरने की उसकी योजना है। पर पता नहीं क्यों उसे हिम्मत नहीं हुई। इस बीच उसे राज की ओर से उपवास प्रार्थना सभा में उपस्थित होने का निमन्त्रण मिला।

सभा में हो रहा शोर-शराबा रेणु को अजीब सा लगा। मुझे तो मन की शान्ति चाहिये। ऐसा लगता नहीं कि इस शोर-शराबे में मुझे वह शान्ति प्राप्त होगी। कुछ भी हो, आ तो गई हूँ यही सोचकर रेणु पिछली पंक्ति में जाकर बैठ गई और तभी प्रचारक की आवाज सुनाई दी। पिछली पंक्ति में दूसरे स्थान पर बैठी बहन से परमेश्वर का आत्मा कहता है, तू ने अपनी जिन्दगी को समाप्त करने के लिये जहर ख़रीद कर रख्रा हुआ है। तेरी इस स्थिति को मैं देख्र रहा हूँ। अपनी समस्याओं को लेकर मेरे निकट आओ। तुम्हारी सहायता करने के लिये मेरे हाथों में अब भी सामर्थ है।

इस प्रकार रेणु मसीह की विश्वासी बनी थी।

उनकी कलीसिया के एक सज्जन व्यक्ति थे, राजेश चाचा। एक निजी बैंक में काम करनेवाले राजेश चाचा कार्य के दौरान भी अपने ग्राहकों को सुसमाचार दिये बिना नहीं छोड़ते थे। कलीसिया में उपदेश और सार्वजनिक स्थलों पर भी उपदेश देने में वे समर्थ थे।

रोजेश चाचा का व्यक्तित्व ही साजी को उस सभा की ओर आकर्षित किया था। साजी ख़ाड़ी देश में नौकरी किया करता था। दो साल ही वह वहाँ पर काम कर पाया था। वीज़ा का नवीनीकरण नहीं हुआ। कुछ धन वह बचा सका था। अपने देश वापस आकर उसने पुराना नल फिटिंग का काम शुरू किया था। राजेश चाचा ने ही उसे बताया था कि बैंक में जमा धन यदि निजी बैंक में जमा करोगे तो कितना अधिक ब्याज मिलता है। उन्होंने यह भी कहा था कि वह अपने बैंक में जमा करवाने के लिये यह सलाह नहीं दे रहे हैं। आप चाहे कभीं भी उस धन को जमा कर सकते हैं, मेरे बैंक में ही करें यह जरूरी नहीं, मैं तो केवल प्रबंधक हूँ। राजेश चाचा ने इस प्रकार कहा तो था लेकिन साजी ने उन्हें के बैंक में धन डाला। उस सज्जन निःस्वार्थ राजेश चाचा के साथ आराधना करने के लिये साजी बहुत उत्साहित रहता था।

बन्टी की पृष्ठभूमि कुछ और थी। अमेरिकी नागरिक और उद्धार प्राप्त तथा बपतिस्मा ली हुई सुषमा नामक युवती के विवाह प्रस्ताव को उसने विज्ञापन में देखा था। सिविल इंजिनियर बन्टी के संपर्क करने पर उनकी केवल इतनी सी मांग थी कि बन्टी बपतिस्मा लेकर विश्वासी कलीसिया में सदस्य बने। कलीसिया में बहुत अधिक सक्रिय रहने की आदत के कारण बन्टी को इसमें कुछ फर्क नहीं लगा था। विवाह के लिये उसने बपतिस्मा लिया था परन्तु नया जीवन उसे बहुत अच्छा लगने लगा था। केवल सुषमा का साथ ही नहीं परन्तु पेन्तिकुस्त विश्वासी बनना भी बन्टी के आनन्द का कारण था।

ये सभी लोग-रजनी, राजन, रेणु, साजी, बन्टी - नई कलीसिया में सन्तुष्ट थे। अच्छी संगति, अच्छी आराधना, बीच बीच में आनेवाले सेवकगण.....। हाल ही में विश्वास में आये कई लोगों को अपने रिश्तेदारों से विरोध का सामना करना पड़ा था फिर भी वे स्थिर रहे। कलीसिया में इतनी अच्छी आराधना होती थी कि निन्दा और अपमान उनके विश्वास को डिगा नहीं सके। एक आराधना के समाप्त होती ही वे अपनी सारी मुसीबतें भूल जाते थे।

इतना सब होने के बावजूद उस कलीसिया में कुछ बातें घटीं। कुछ भी किसी के कारण नहीं घटा फिर भी कई नये विश्वासी अपने विश्वास से हट कर चले गये।

यह ठीक है कि रजनी को अद्‌भुत चंगाई मिली थी, परन्तु अचानक ही वह घटना हुई जब उसका प्यारा सा बेटा अमन पीछे की ओर आ रहे स्कूल बस के नीचे आकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। कहने की जरुरत नहीं है कि ये उनके लिये एक बहुत बड़ा आघात था। मृत्यु संस्कार में कलीसिया के सब लोगों ने सहयोग किया पर घर वालों ने उनको त्याग दिया था। ''गृह देवताओं को छोड़कर नई ईश्वर की पीछे जाने के कारण ईश्वरों ने बेटे की मृत्यु के रुप में यह दण्ड दिया है,'' उनका कहना था। राजन को बहुत बड़ा सदमा लगा था, ''यह सब कुछ किसके लिय?'' यही उसका विचार था। बेटी की मृत्यु के कई सप्ताह गुजर जाने के पश्चात् भी वह नौकरी पर नहीं गया और जब गया तो कैश काउंटर में हिसाब-किताब गड़बड़ होने लगा। वह सौ की जगह पांच सौ और पांच सौ की जगह सौ का नोट वह देने लगा। सहकर्मियों ने उसे एक दूसरे विभाग में बिठा दिया पर वहाँ पर सब कुद गड़बड़ होता रहा। अभी राजन लम्बी छुट्टी पर है। पति और पत्नी दोनों ही आराधना में नहीं आते हैं साथ ही साथ नई समस्याओं के निवारण के लिये झाड़ फूंक करने वालों के पास जाते भी हैं।

रेणु की बात कहें तो उसके लिये भविष्यद्धक्ता लोग अधिक महत्व रखते थे।

छोटी-छोटी बातों के लिये वह भविष्यद्धक्ताओं से पूछती थी। परन्तु एक सभा में एक नये भविष्यद्धक्ता ने सबके सामने उसकी ओर इशारा करते हुये कहा, ''तुम्हारे पापी दशा को मैं देखता हूँ, अपने अभिलाषाओं के बन्धनों को छोड़कर पवित्रता के मार्ग की ओर मुड़ो। मैं भस्म करने वाली आग हूँ।'' रेणु इसे सह न सकी। पति के दूसरी महिला के साथ रहने के बावजूद आज तक उसने किसी और का विचार भी मन में नही लाया था। फिर भी सार्वजनिक रुप से पापी के रुप में उसका चित्रण करने वाली आत्मा उसके लिये समझ से परे थी। बाद के दिनों में कलीसिया के लोगों का व्यवहार रेणु को व्यतिथ करने लगी। पास्टर और कलीसिया के किसी भी पुरुष सदस्य को यदि उससे बात करना पड़ता तो वे जल्दी से जल्दी उसके पास से भागने का प्रयास करते। रेणु से बात करने वाले पुरुषों की पत्नियों उन्हें घूर कर और क्रोधित नजरों से देखने लगी। अब रेणु घर में ही बैठी रहती है। अब उसके मन में फिर से जहर की बोतल खरीदने का विचार उमड़ता रहता है।

राजेश चाचा एक 'सज्जन' व्यक्ति होने के बावजूद उनका बैंक दिवालिया हो गया। कुछ लोग कहते हैं, कि दिवालिया हुआ नहीं दिवालिया कर दिया गया था। चाहे कुछ भी हो गरीबों के लाखों रुपया डूब गये। बेचारे राजेश चाचा क्या करते? कलीसिया के लोगों ने उन के लिये उपवास के साथ प्रार्थना किया। किन्तु पुलिसिया जाँच में यह बात सामने आई, कि वे प्रबंधक मात्र नहीं थे परन्तु प्रमुख साझेदारों में से एक भी थे। गरीबों के लाखों रुपये लेकर राजेश चाचा नौ दो ग्यारह हो गये थे।

'सज्जन' राजेश चाचा की धोखधड़ी की खबर बाहर आने पर सब को आघात तो लगा परन्तु सब से अधिक बुरा बन्टी को लगा था। क्या विश्वासी लोग अविश्वासीयों से इसी प्रकार 'अलग' दिखते हैं? बन्टी के मन में अब यही सन्देह है।

बन्टी को अब सुषमा के खत आना बन्द हो गये हैं। फोन करने पर भी वह उपलब्ध नहीं हो पा रही है। अन्ततः किसी दूर के रिश्तेदार से पता चला कि वह अब एक अंग्रेज के साथ रह रही है। यह कहना सच होगा कि इससे बन्टी का अमेरिका जाने का सपना ही चूर-चूर नहीं हुआ था बल्कि उसकी जिन्दगी ही मानो बिखर गई थी। बन्टी अब विश्वासी नहीं रह गया था। अब वह आराधना में नही जता है। यह कहना अधिक सच होगा कि सार्वजनिक जीवन से वह लगभग कट-सा गया है। वह शराब में डूबने उतराने लगा था।

वास्तव में क्या हुआ?

क्या राजन, रजनी, रेणु, साजी बन्टी ये सब सच्चे विश्वासी नहीं थे? निश्चय

ही वे विश्वासी थे। उनकी आराधना में पाखण्ड नहीं था। निष्कपट होकर उन्होंने परमेश्वर की सेवा की थी, किन्तु उनके विश्वास की नींव उनके अनुभव मात्र थे। अद्‌भुत चंगाई ने राजन और रजनी को मसीह का विश्वासी बनाया था। रेणु भविष्यद्वक्ताओं के शब्दों में उलझ गई थी। साजी को एक आदर्श व्यक्ति ने विश्वास में लाया था। बन्टी को सुषमा ने.....।

हम सब को भी विश्वास में लाने के ऐसे ही कई कारण होंगे। माध्यम चाहे कुछ भी हो हम इस बहुमूल्य विश्वास के वाहक बन तो गये हैं; हम परमेश्वर को धन्यवाद दें। किन्तु यदि हमारे विश्वास की नींव हमारे अनुभव मात्र हैं तो इसके विपरित एक अनुभव हमें विश्वास से पीछे भी ले जा सकता है।

स्थिर रहने और बिचर जाने वाले विश्वास के बारे में यीशु मसीह के इस दृष्टान्त पर ध्यान दीजिये।

''.....इसलिये जो कोई मेरी ये बातें सुनकर उन्हें मानता है, वह उस बुद्धिमान मनुष्य के समान ठहरेगा, जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया, और मेह बरसा और बाढ़ें आई, और आन्धियाँ चलीं और उस घर से टकराई फिर भी वह नहीं गिरा, क्योंकि उसकी नींव चट्टान पर डाली गई थी। परन्तु जो कोई मेरी ये बातें सुनता है, और उन पर नहीं चलता वह उस निर्बुद्धि मनुष्य के समान ठहरेगा, जिसने अपना घर बालू पर बनाया और मेह बरसा, और बाढ़ें आई, और आन्धियाँ चलीं, और उस घर से टकराईं, और वह गिरकर नाश हो गया।'' (मत्ती ७:२४-२७)।

''जो मेरी ये बातें सुनकर उन पर चलता है...,'' वह ही चट्टान पर नींव डालने वाला है। उसकी स्थिरता, उसकी नींव यीशु मसीह का वचन है। जिसने वचन पर विश्वास को दृढ़ किया है वह भारी वर्षा से, नदी के उफान से, हवा के बहाव से नाश नहीं होगा। जो ऐसा नहीं करता है, वह रेत पर घर बनाने वाला है। काम जल्द होता है, परन्तु उसका विनाश भी जल्द होता है।

यीशु के वचन इस ओर इशारा करते हैं कि हम चाहे किसी भी माध्यम से उद्धार के अनुभव में आए हों, यदि हम अपने विश्वास को वचन में जड़ पकड़ने नहीं देते हैं, तो हमारा विनाश सन्निकट है। हमें वचन को जानने वाले और उसको मानने वाले होना है।

2 वचन देहधारी हुआ

यदि हमसे पूछा जाए कि हमें किस प्रकार उद्धार मिला, तो निःसंदेह हमारा उत्तर होगा : *पापमोचन के लिये यीशु द्वारा क्रूस पर दिया गया बलिदान!!*

बिल्कुल सही उत्तर। किन्तु यूहन्ना कहता है, कि यीशु देहधारी वचन है। ''आदि में वचन था, और वचन परमेश्वर के साथ था, और वचन परमेश्वर था...और वचन देहधारी हुआ; और अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण होकर हमारे बीच में डेरा किया...।'' (यूहन्ना 1:1,14)

हो सकता है एक बार में हम इसकी गहराई तक न पहुँच पाएँ। वचन का अर्थ केवल शब्द ही नहीं है। यूहन्ना यहाँ जिस यूनानी शब्द ''लोगोस'' का प्रयोग करता है उसका अर्थ बहुत व्यापक है। इसका अर्थ तर्क, विचार, मन जैसे शब्द हो सकते हैं। यहूदी, यूनानी विचारों में 'लोगोस' शब्द बहुत सटीक अर्थ रखता है।

मेरा विचार है कि विचार, तर्क, मन यह सब मेरे ही तो भाग हैं। परन्तु मैं किस प्रकार अपने विचार, तर्क, और मन को प्रगट करता हूँ? शब्दों के द्वारा! यदि शब्दों के द्वारा प्रगट न किया जाये तो मेरे विचार और मन गुप्त रहेंगे। वचन मेरे मन को प्रगट करता है। मन अर्थात् यह मुझे ही प्रगट करता है। चूँकि मन मुझ से अलग नहीं है, इसलिये मेरा वचन मेरा ही प्रकाशन है।

परमेश्वर का वचन भी ऐसा ही है। परन्तु वचन जब परमेश्वर का है तो उसकी विशेषतायें भी कई गुना हो जाती है।

सृष्टि में परमेश्वर के वचन ने कार्य किया है।

''आकाशमण्डल यहोवा के वचन से, और उसके सारे गण उसके मुँह की श्वास से बने'' (भजन 33:6)।

यूहन्ना अपने सुसमाचार में इस विचार पर जोर देता है। ''सब कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ, और जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसमें से कोई भी वस्तु उसके बिना उत्पन्न नहीं हुई'' (यूहन्ना 1:3)।

यहूदी विचार था कि परमेश्वर केवल सृष्टि की रचना में ही नहीं परन्तु उसे संभालने में भी कार्यरत था।

''वह पृथ्वी पर अपनी आज्ञा का प्रचार करता है, उसका वचन अति वेग से दौड़ता है...वह बर्फ के टुकड़े गिराता है...वह आज्ञा देकर उन्हें गलाता है; वह वायु बहाता है, तब जल बहने लगता है'' (भजन 147:15-18)।

''वह अपने वचन के द्वारा उनको चंगा करता है...'' (भजन 107:20)।

परमेश्वर के वचन के द्वारा सृष्टि की रचना का कार्य ही नहीं होता है अन्त भी परमेश्वर के वचन के द्वारा ही होगा। पतरस कहता है कि संहार भी परमेश्वर का ही कार्य है।

''वे तो जान बूझकर यह भूल गए कि परमेश्वर के वचन के द्वारा आकाश प्राचीन काल से विद्यमान है और पृथ्वी भी जल में से बनी और जल में स्थिर है, इसी के कारण उस युग का जगत जल में डूब कर रष्ट हो गया। पर वर्तमान काल के आकाश और पृथ्वी उसी वचन के द्वारा इसलिये रखे गए हैं कि जलाए जाएँ, और ये भक्तिहीन मनुष्यों के न्याय और नष्ट होने के दिन तक ऐसे ही रखें रहेंगे'' (2पतरस 3:5-7)।

यहूदी दर्शन 'वचन' के स्वतन्त्र अस्तित्व का समर्थन करता है। इसहाक याकूब को सारी आशीषें दे चुका था। कुछ समय पश्चात् एसाव पहुँचा। इसहाक का कहना था कि शब्द उसके हाथ से छुट गये। अब उन्हें वापस नहीं लिया जा सकता।

यहूदियों का विचार था कि *परमेश्वर* और *परमेश्वर का वचन* दोनों शब्द एक दूसरे के बदले में उपयोग किया जा सकता था। उनके शास्त्रीगण जो भक्ति में बहुत

उच्च स्थान पर थे 'यहोवा' शब्दा का इस्तेमाल बहुत भय के साथ करते थे। पुराना नियम की सामान्य व्याख्या (टार्गूम) में कई स्थानों पर *परमेश्वर के नाम* के स्थान पर *'परमेश्वर का वचन'* का उपयोग किया गया है।

''मूसा लोगों को परमेश्वर से भेंट करने के लिये छावनी से निकाल ले गया'' (निर्गमन 19:17-पुराना नियम)।

''मूसा लोगों को परमेश्वर से भेंट करने के लिये छावनी से निकाल ले गया'' (टार्गूम-पुराना नियम का अरामी भाषा का अनुवाद)।

इस अर्थ में यूहन्ना के शब्दों का अर्थ 'वचन परमेश्वर के साथ था, वचन परमेश्वर था' है। यह बात इस तथ्य को सरल करता है। वचन परमेश्वर के मन का प्रगटीकरण है : वह परमेश्वर के साथ था, वह परमेश्वर था।

यूनानी दार्शनिकों के लिये 'वचन' शब्द नया नहीं था। होरोक्लिटस नामक दार्शनिक का कहना था क लोगोस वह 'कारक' है जो जगत के सभी गतिविधियों को नियन्त्रित करता है। प्लेटो के दर्शन शास्त्र में भी लोगोस का महत्वपूर्ण स्थान था। प्लेटो ने कहा कि विचार मात्र वास्तविकता है। बाकि सब कुछ जो जगत में हम देखते हैं, उस अनदेखे विचार का प्रतिबिम्ब मात्र है! उदाहरण के लिये एक सुन्दर चित्र की कल्पना कीजिये। वास्तविक चित्र कहाँ है? चित्रकार के मन में! चित्रकार चित्रपट पर अपने मन को उकेरता ही है। वास्तविकता चित्रकार के मन के भीतर का विचार है। हाँ, सच यह है कि हम विचार मात्र को ही पढ़ पाते हैं।

इस बात को जानकर कि उसके पाठक यहूदी और यूनानी दर्शन शास्त्र में प्रवीणता रखने वाले हैं, यूहन्ना यीशु मसीह के देहधारण को 'लोगोस' दर्शन की पृष्ठभूमि में समझाने का प्रयास करता है। यूहन्ना का कहना यह है कि यीशु परमेश्वर का वह लोगोस है जिसे परमेश्वर से अलग करके नहीं देखा जा सकता और लोगोस-वचन-देहधारण के द्वारा लोगों के पढ़ने के लिये संसार में अवतरित हुआ है।

''जिसके द्वारा सारी सृष्टि उत्पन्न हुई, उस परमेश्वर का लोगोस; जो सारी सृष्टि को वश में रखता है, उस परमेश्वर का लोगोस...देखो, पिता की महिमा के प्रकटीकरण के रुप में हमारे बीच में डेरा किया है : परमेश्वर का वचन देहधारण किया है-शरीर को पहन लिया है! वही यीशु मसीह है। परमेश्वर को कभी किसी ने नहीं

देखा। हमारे पास इस विषय में बहुत कम जानकारी थी कि परमेश्वर कैसा है। लेकिन अब एकलौता पुत्र जो पिता की गोद में बैठा है हमारे बीच में आकर डेरा करने के द्वारा पिता को हम पर प्रगट किया है'' (यूहन्ना 1-14, 18)।

परमेश्वर का लोगोस शरीर धारण कर यीशु के रुप में-हम में से एक बन कर जीने के कारण ही हम परमेश्वर के स्वभाव को समझ पाते हैं। लेकिन यूहन्ना कहता है कि परमेश्वर का वचन देहधारण करने का एक और कारण है, ''अनुग्रह और सच्चाई को संसार में लाने के लिये...जो उसे ग्रहण कर उसके नाम पर विश्वास करते हैं उन सब को परमेश्वर की सन्तान बनाने के लिये...वचन देहधारण किया'' (यूहन्ना 1:17, 12)।

हमें परमेश्वर की सन्तान बनाने के लिये देहधारण करने वाला वचन-यीशु को बहुत मूल्य चुकाना पड़ा...अपना जीवन बलिदान करना पड़ा! देहधारण करने वाले वचन (यीशु मसही) के क्रूस की मृत्यु के द्वारा ही कोई भी उद्धार के विषय में जानना प्रारंभ करता है। हम सबको उद्धार प्रदान करने वाला देहधारण करने वाला वचन ही है।

हमने देखा कि वचन ही हमें उद्धार उपलब्ध कराता है। परन्तु कौन हमें उद्धार में बढ़ाता है? यह समझने में कठिनाई नहीं है कि इसके लिये भी वचन ही कार्य करता है।

''नये जन्मे हुये बच्चों की नाई निर्मल आत्मिक दूध की लालसा करो, ताकि उसके द्वारा उद्धार पाने के लिये बढ़ते जाओ'' (1पतरस 2:2)।

यदि हमारे उद्धार को संभव करने वाला देहधारी वचन है, तो उस उद्धार से हमें बढ़ाने वाला लिखित वचन है। वचन का इन्कार करने वाला स्थिर नहीं रह सकता।

''क्योंकि वे तो वचन को न मानकर ठोकर खाते हैं और इसी के लिये वे ठहराये भी गये थे'' (1 पतरस 2:8)। संभव है कि हम विभिन्न माध्यमों से उद्धार का अनुभव प्राप्त किये हैं। परन्तु अलग-अलग मार्गो से नहीं। उद्धार के लिये मार्ग एक ही है...देह में अवतरित परमेश्वर का वचन!

अपनी क्रूस मृत्यु के द्वारा सनातन वचन रुपी यीशु ने हमें अनन्त जीवन दिया है। उसी प्रकार उद्धार में बढ़ने के लिये भी हमारे पास एक ही मार्ग है। चट्टान

पर नींण रख्ने वाले के समान अपने विश्वास का आधार लिखित वचन में डालें। वचन रुपी निर्मल दूध पीकर बढ़ चलें।

उद्धार पाने के लिये आप के पास देह में अवतरित वचन ही एक मात्र मार्ग है। उद्धार में बने रहने के लिये आपके पास लिखित वचन रुपी मार्ग ही है। (The incarnated word of God is God's way for you to obtain your salvation while the written word of God is God's way for you to sustain your salvation.)

लिखित वचन हमें निरन्तर उद्धार के अनुभव में बढ़ाता है। वचन में न बढ़ने के कारण ही राज की कलीसिया के कई लोग बीच में ही वापस चले गये।

3 अच्छी भूमि पर गिरा बीज

अभिनव ने किसी सुसमाचार सभा में परमेश्वर का वचन सुना था। उसे बेहद ख़ुशी हुई थी। अगले दिन वह निकट की कलीसिया में चल रही प्रवचन सभा में गया। वहाँ उपस्थित लोगों की प्रसन्नता देख़कर उसके हृदय में भी एक नये जीवन की चाह जाग उठी। ''मैं भी पीना ख़ाना सब छोड़कर आप लोगों के समान बनना चाहता हूँ।'' अभिनव ने ख़ड़े होकर सबके सामने अपनी इच्छा जताई। दोपहर के भोजन के बात अभिनव ने एक झपकी ली। शाम ढले मित्र सुदेश ने उसे जगाया। वह जिद करने लगा कि उसके पास 'रम' की दो बोतल है और उसी से आज की शाम को गुलजार करते हैं। उसने उसे बताया कि उसने पीना छोड़ दिया है। यह सुनकर सुदेश हँसने लगा। वह भी बाइबल की कुछेक बातों को जानता है।

पर थोड़ा पी लेने में हर्ज ही क्या है। यह सोचकर वह कहने लगा, ''अगर सच्चा मसीही होना है तो थोड़ा पीना चाहिये। यीशु मसीह भी तो पीते थे न? उसने ही तो विवाह समारोह में शराब बनाकर दिया था। फिर हमारे पीने में हर्ज ही क्या? नहीं तो फिर क्यों ईश्वर ने इन वस्तुओं को बनाया?...''

फिर भी सुदेश, प्रचारक महोदय ने तो उस दिन कहा था कि बाइबल में लिख़ा है कि ''पियक्कड़ लोग परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं करेंगे।'' अभिनव ने अपनी बात को आधार दिया। किन्तु उसके लिये भी सुदेश के पास तर्क था।

''अभिनव, तुम्हारी कलीसिया में भी तो, तुम लोगों को यह दिया जाता है। यह भी तो उसी तरह ही है? अरे यार, तुम्ही बताओ, सरकार शराब दुकान का लाइसेंस क्यों देती है? अगर पीना बुरी बात होती तो सरकारें इसे रोकती क्यों नहीं?'' सुदेश ने तर्क किया।

अभिनव उसके साथ निकल पड़ा। किसी पार्क के कोने में बैठकर दोनों ने रम की बोतल खाली की। उसके बाद कभी भी अभिनव किसी आराधना सभा में नजर नहीं आया।

सागर की पत्नी विभा भी बड़ी इमानदारी से आराधना सभाओं में जाया करती थी। आँसूओं से भरी उसकी प्रार्थनाएँ पुरानी मसीहियों को भी शर्मिन्दा कर देती थी। उनमें से कई लोगों ने माना कि 'इन नये लोगों के द्वारा ईश्वर हममें आग भरना' चाहता है। जब विभा ने पास्टर से अपने घर में प्रार्थना सभा का आयोजन करने का आग्रह किया तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था। कहीं उसके पति ने विरोध किया तो.....? परन्तु विभा की दृढ़ता देख उन्होंने अपनी सहमति दे दी। विभा ने दृढ़ता के साथ कहा कि पत्नियों को प्रभु में अपने पतियों के अधीन रहना चाहिये। उससे बाहर का आज्ञा पालन प्रभु नहीं चाहता है।

उपवास प्रार्थना के पहले दिन अपने घर आए लोगों से सागर प्रारंभ में गप्प हाँकते रहे पर प्रार्थना सभा के प्रारंभ होते ही वह उठकर बाहल चले गये। उपवास प्रार्थना की सभा काफी कोलाहल से भरपूर रहा। अपने इस विश्वास के कारण कि अधिक जोर से गीत गाने से दुष्टात्मायें भाग जाती और शैतानी बंधन खुल जाती है, लोग जोर जोर गीत गा रहे थे। सागर के मित्रों ने उससे घर में हो रहे शोरगुल के विषय में प्रश्न किया। जब मसीहियों ने भी उसकी पत्नी का मजाक उड़ाने लगे तब उसे भारी शर्मिन्दगी और क्रोध हुआ। घर आते ही उसने घोषणा कर दी। ''यहाँ पर कोई प्रार्थना बगैरह नहीं होगी।''

अगले दिन भी प्रार्थना हुआ विभा चुपचाप बैठी रही। तीन दिन की सभा का आयोजन था। बीच में रोकने के लिये किस मुँह से कहती।

जब सागर को पता चला तो उस रात घर में खूब झगड़ा हुआ। बात मारपीट तक पहुँच गई। सागर ने पहली बार विभा पर हाथ उठाया था।

अगले दिन सागर घर में ही रह गया। जब प्रार्थना के लिये लोग आये तो उसने उन्हें साफ मना कर दिया। ''अब कभी इस घर में पैर नहीं रखना। हड्डी पसली तोड़ दूँगा...?''

अब विभा अपने पुराने जीवन में ही व्यस्त है। उसके मन में यीशु से प्रार्थना करने की इच्छा तो है, परन्तु उसे एक बात समझ में नहीं आ रही है कि इतनी लगन के बावजूद परमेश्वर ने उसे सताव में से क्यों गुजरने दिया। अब वह कहती है कि कुछ भी हो पर इतनी पीड़ा देने वाली भक्ति की आवश्यकता नहीं है।

जॉर्ज और उनकी पत्नी लता साथ साथ ही उद्धार के अनुभव में आये थे। बड़े आनन्द के साथ वे आराधना में जाया करते थे। उनकी इस नई भक्ति पर घरवालों की ओर से विरोध तो होता ही था परन्तु एक पवित्र जीवन के लिये वे सब कुछ सह रहे थे। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अडिग रहने के कारण कलीसिया के अन्य विश्वासीगणों के हृदयों में उनके प्रति विशेष स्नेह और आदर प्राप्त था और वे अक्सर उनके लिये प्रार्थना किया करते थे।

बी.एड् पास लता के लिये निकट स्थित मिशन स्कूल में नौकरी की बात हो चुकी थी। परन्तु उसके दूसरी कलीसिया में चले जाने के कारण उसे वह नौकरी देने से उन लोगों ने इंकार कर दिया। ''हमें अपनी कलीसिया में स्थिर रहने वालों की सहायता करनी पड़ती है, जॉर्ज। अगर आप लोगों का विश्वास वहीं है तो कोई बात नहीं। आप लोग वहीं जाइये। वही लोग नौकरी भी देंगे।'' पास्टर ने शुभकामनायें प्रगट की। उनकी नई कलीसिया के अधीन विद्यालय कहाँ था!!

यह मुसीबत उन पर अचानक आ पड़ी थी। जॉर्ज और लता ने इस पर बहुत विचार किया। जॉर्ज की प्राइवेट नौकरी को कोई ग्यारेंटी नहीं है। और तो और, उस नौकरी से कोई विशेष वचत भी नहीं होती है। आजकल जिसके जेब में पैसे न हों उसे पूछता ही कौन है?

अगले ही दिन जॉर्ज और लता विद्यालय के मैनेजर के पास पहुँचे। ''साहब, हम कलीसिया बगैरह बदलने नहीं जा रहे हैं। मरते दम तक हम इसी कलीसिया में रहेंगे। कृपा करके आप वह नौकरी लता को ही दे दीजिये।''

इन सबको क्या हुआ था? अभिनव, विभा, जॉर्ज, लता इन सबने वचन सुना और उसे माना भी परन्तु वह उनमें बढ़ नहीं पाया। यीशु के शब्दों में कहें तो उनमें से कोई भी तैयार खेत नहीं था।

''एब बीज बोलेवाला बीज बोले निकला। बोते समय कुछ बीज मार्ग के किनारे गिरे और पक्षियों ने आकर उन्हें चुग लिया। कुछ बीज पथरीली भूमि पर गिरे, जहाँ उन्हें बहुत मिट्टी न मिली और गहरी मिट्टी न मिलने के कारण वे जल्द उग आये पर सूरज निकलने पर वे जल गये और जड़ न पकड़ने से सूख गये। कुछ बीज झाड़ियों में गिरे और झाड़ियों ने बढ़कर उन्हें दबा डाला। पर कुछ बीज अच्छी भूमि पर गिरे और फल लाये : कोई सौ गुणा, कोई साठ गुणा, और कोई तीस गुणा, जिसके कान हों वह सुन ले'' (मत्ती 13:3-9)।

इस कहानी में वर्णित 'बीज' ईश्वर का वचन है यह समझने के लिये हमें किसी किताब में देखने की आवश्यकता नहीं है। यीशु मसीह ने स्वयं ही इस उदाहरण का अर्थ समझाया है।

''बीज'' बोने वाले का दृष्टान्त सुनिये। एक व्यक्ति परमेश्वर के राज्य का वचन सुनकर उसे ग्रहण नहीं करता है जिस कारण शैतान आकर उसके हृदय से उस बीज को निकाल कर बाहर फेंक देता है। यही है मार्ग के किनारे गिरा हुआ बीज। चट्टान पर गिरा हुआ बीज वह है जो एक व्यक्ति वचन सुनकर आनन्द के साथ ग्रहण तो करता है परन्तु जड़ नहीं पकड़ने के कारण उस वचन का विकास क्षणिक होता है। वचन के कारण परेशानी या उपद्रव सहना पड़े तो वह जल्द ही डगमगा जाता है। इस संसार के विचार और धन की लालच के कारण वचन बढ़ नहीं पाता है जिसके कारण वह सूख जाता है। अच्छी भूमि पर गिरा हुआ बीज वह है जो एक व्यक्ति वचन सुनकर ग्रहण करता है और वह उगता है और सौ गुणा, साठ गुणा, और तीस गुणा फल लाता है।

अभिनव ने प्रवचन समारोह में जो वचन सुना वह मार्ग के किनारे गिरे बीज के समान ही था, वह जड़ नहीं पकड़ा। उसने सुना कि मद्यपान करने वाले परमेश्वर के राज्य में नहीं पहुँचेंगे। उसने विचार किया कि वह शराब पीना बन्द कर परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करेगा। परन्तु उसके बुरे मित्रगणों के उसमें से वचन को निकाल बाहर करने में अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ी।

विभा में वचन मार्ग के किनारे गिरे हुये बीज के समान कार्य किया। वह गहराई में जड़ न पकड़ने के कारण वह जल्दी उग आया और बढ़ने लगा। वह कितने आवेश में थी! परन्तु वचन के कारण सताव आने की उसे उम्मीद नहीं थी। यहे देखकर वह मुर्झा गई।

जॉर्ज और लता दोनों ने वचन सुना था। घरवालों की ओर से आई तकलीफें और विरोध ने उन्हें पराजित नहीं किया परन्तु इस संसार के विचार और धन के धोखे ने उन्हें गिरा दिया।

आज भी वचन सुनने वाले तो बहुत से हैं परन्तु उनमें से बहुत कम लोग स्थिर रह पाते हैं उसके यही सब कारण हैं। अधिकतर लोग वचन को हृदय के अन्दर प्रवेश न देकर शत्रु के द्वारा बीने जाने के लिये मार्ग के किनारे ही डाले रहते हैं। हमेशा बुरी अभिलाषाओं को प्रवेश देने के लिये द्वार को खुला ही रखते हैं। उनको जीवन किसी भी आने जाने वाले के लिये प्रतिबन्धित नहीं रहता है। अन्य लोगों के लिये वचन हर प्रकार का सुख-सुविधा देने और लाभ प्रदान करने वाला कारण बन जाता है। सताव उनके शब्दकोश में नहीं है। बिना सताव का वचन ही उन्हें चाहिये। अन्य कुछ लोग वचन का मूल्य चुकाना नहीं चाहते हैं। वे अपने आपको सुरक्षित और सुख सुविधाओं से भरपूर रखना चाहते हैं।

प्रफुल्ल भी निकट की कलीसिया का सदस्य है। एक निजी कम्पनी में स्टेनोग्राफर होने के कारण उसका आय बहुत कम है। उसके घर के लोग कट्टर कैथलिक हैं। जब उन्होंने सुना कि उसने उद्धार पाया है तो उन्होंने बहुत ही हो-हल्ला मचाया। माँ छाती पीटकर विलाप करने लगी। उसने माँ को समझाना चाहा। ''मैं ने कुछ भी गलत नहीं किया है। मैं ने सही किया है। अब तक तो मैं कभी कभी मद्यपान करता था अब वह भी नहीं करूँगा। जब मैं ने बुरा मार्ग छोड़ दिया है तो आप लोग मुझ पर क्यों क्रोधित हो रहे हैं? प्रफुल्ल की बातें उसके बूढ़े माँ बाप को समझ में तो आई परन्तु वे शान्त हो गये। अगले महीने तनख्वाह मिलने पर उसने बूढ़े पिता के हाथ में हर माह की तुलना में सौ रुपया अधिक दिया। कलीसिया में दशमांश देना भी वह नहीं भूला।

सबसे बड़ी समस्या बड़े दिन का त्योहार था। कम्पनी की सभी लोग पिकनिक जा रह थे। प्रफुल्ल को भी जाना ही था। किन्तु पिकनिक के दौरान सब दोस्तों के लिये वह आश्चर्य का केन्द्र बन गया। जब सबने मद्यपान किया तो वह अलग खड़ा रहा। वह दोस्तों की जिद् और प्रलोभन में नहीं गिरा। जब सब लोग मूवी देखने गये तो वह लॉज के अपने कमरे में बैठा रहा और बाइबल पढ़ता रहा। वह हर उस प्रकार के मनोरंजन में शामिल हुआ जो उसके विश्वास के विरोध में नहीं था। परन्तु आत्मिक बातों के विषय में जिन बातों की मनाही थी उन बातों से वह दूर ही रहा। इतवार की सुबह ही जब उसके बॉस ने उसे काम के लिये बुलाया तब

वह परीक्षा में पड़ गया। उसका कहना था कि बॉस को जब भी जरुरत है वह स्टैनो को बुला सकते हैं। परन्तु प्रफुल्ल ने कहा, ''हो सकता है यह सही हो परन्तु मेरे लिये आराधना का समय यही है। उससे अनुपस्थित रहना मेरे लिये मुश्किल है।

प्रफुल्ल नौकरी छोड़ने के लिये भी तैयार था। यद्यपि अपने गरीब परिवार का एक मात्र सहारा वही था। किन्तु बाद में उसके बॉस ने उसके कहे अनुसार उसे कभी भी इतवार को काम पर नहीं बुलाया। और उसे नौकरी भी खोना नहीं पड़ा। प्रफुल्ल का जीवन उसके दोस्तों और सहकर्मियों के लिये एक चुनौती बन गया। उनमें से कुछ लोग अब उसी की कलीसिया में आराधना के लिये जाते हैं।

न केवल प्रफुल्ल ने वचन के बढ़ने के लिये अपने हृदय रुपी भूमि को तैयार किया बल्कि उसने प्राप्त वचन को सहकर्मियों के साथ बाँटा भी। वह फलदायक बना। अच्छी भूमि पर गिरा बीज ही फल लाया। जैया कुछ लोग सोचते हैं कि मार्ग के किनारे गिरा बीज तीस गुणा और चट्टान पर गिरा बीज साठ गुणा और अच्छी भूमि पर गिरा बीज सौ गुणा लाया, ऐसा नहीं है। केवल जो बीज अच्छी भूमि पर गिरा वही तीस गुणा, साठ गुणा, और सौ गुणा फल लाया। अन्य कोई भी बीज फल प्राप्ति तक नहीं पहुँच सका।

हमें यह भी नहीं भूलना है कि बीज अन्तर नहीं लाता है। हर जगह एक ही बीज बोया गया। भूमि या खेत अन्तर लाता है। जो बीज अच्छी भूमि पर गिरा केवल वही फल लाता है। वचन को ग्रहण करने में हमें इस बात को अवश्य ही समझना है कि तैयार खेत कितना अधिक अनिवार्य है।

4 वचन में आनंदित हों

सुनीता किसी भी तरह आत्मिक रूप से उन्नति प्राप्त करना चाहती है। उसके पास्टर ने उससे कहा कि इसके लिये सबसे आवश्यक कार्य वचन पर मनन करना है। धन्य है वह जो उसकी व्यवस्था पर रात दिन ध्यान करते रहते हैं। पहले भजन के इस पद ने उसमें उत्साह भर दिया। उसने निर्णय लिया कि किसी भी तरह वचन पर मनन करने में अधिक समय व्यतीत करेगी।

रात दिन ध्यान करना तो सम्भव नहीं था परन्तु उसने निर्णय लिया कि कम से कम दिन में पांच अध्याय अवश्य पढ़ेगी। सुबह उसके लिये समय निकालना संभव नहीं होता। सबसे अच्छा है पति के दफ्तर जाने और बच्चों को स्कूल भेजने के बाद ख़ाली समय में वह बाइबल पढ़ने में अधिक समय लगा सकती है।

किन्तु वचन पर मनन करना प्रारंभ करने पर ही समस्यायें भी प्रारंभ हुई। सुनीता एक अध्याय पूरा भी नहीं पढ़ पाई कि उसे नींद आने लगी। आँखों को जितना खुला रखने का प्रयास करती उतना ही वे बन्द होती चली जाती। उसने एक झपकी ली। वैसे तो उसे सुबह सोने की आदत नहीं थी। दोपहर के बाद बाइबल पढ़ने बैठने पर भी वैसा ही हुआ। रात में भी हालत भिन्न नहीं थी। हे प्रभु! सुनीता विचार करने लगी। एक अध्याय पढ़ना इतना मुश्किल है! इस पर रात दिन कैसे मनन किया जा सकता है?

पत्रिकाएँ पढ़ते हुये या समाचार पत्र पढ़ते हुये, और तो और बच्चों की कहानी पुस्तक पढ़ते हुये भी सुनीता को नींद नहीं आती है। किन्तु बाइबल पढ़ना परिश्रम का कार्य है! समस्या कहाँ पर है?

पहले भजन के इस पद पर एक बार फिर ध्यान दीजिये।

परन्तु वह तो यहोवा की व्यवस्था से प्रसन्न रहता और उसकी व्यवस्था पर रात दिन ध्यान करता रहता है। (भजन 1:2)

यहोवा की व्यवस्था से प्रसन्न रहनेवाला ही उसकी व्यवस्था पर रात दिन ध्यान कर सकता है। अन्यथा हमारा सारा परिश्रम सुनीता के समान विफल हो जाता है।

एक पुस्तक में हम आनन्दित हो पाते हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उसे किस प्रकार देखते हैं। परमेश्वर के वचन को हम किस प्रकार देखते हैं? अथवा परमेश्वर का वचन हमारे लिये क्या है?

बहुत से लोगों के लिये बाइबल नियमों की एक पुस्तक है। कौन कौन से कार्य हम कर सकते हैं और कौन कौन से कार्य करने की हमें अनुमति नहीं है जैसी बातों का वर्णन करनेवाली नियमों की एक पुस्तक है बाइबल! बाइबल में हमारे द्वारा किये जाने वाले और नहीं किये जा सकनेवाले कार्यों का वर्णन तो है ही फिर भी हम उसे नियमों की एक पुस्तक के रूप में देखते हैं तो हम उसमें आनन्दित नहीं हो सकते हैं। हमारे द्वारा पालन किये जानेवाले नियमों की एक संहिता है - भारतीय दण्ड संहिता। फिर भी उसकी पुस्तक को पढ़कर कौन आनन्द प्राप्त कर सकता है?

कुछ अन्य लोग कहते हैं कि हमें उसे नियमों के रूप में लेने की आवश्यकता नहीं है। हमारे लिये परमेश्वर की इच्छाओं (God's will for Mankind) का वर्णन उसमें किया गया है। उसे केवल निर्देश के रूप में लेने की आवश्यकता है। फिर भी यह जरूरी नहीं कि हम ऐसे निर्देशों पर रात दिन ध्यान कर सकें। क्या किसी भी उपकरण के कैटलॉग पढ़कर हम आनन्दित होते हैं?

वचन हमारे लिये नियमों की संहिता या निर्देश मात्र नहीं होना चाहिये। उसमें इससे अधिक गहराई है। बाइबल के द्वारा ही परमेश्वर यह प्रगट करता है कि वह कैसा है। बाइबल के हर एक पृष्ठ से हम परमेश्वर को जानते हैं (आगे इसका वर्णन करूँगा)।

वचन को प्रिय बनाने वाली एक प्रमुख बात यह है कि इसे हमें किसने दिया है। यह परमेश्वर का बहुमूल्य वचन है।

सुबह चिट्ठियों का वितरण करने के लिये पप्पू डाकिया घर से निकला था। एक पत्र अच्छी तरह चिपका नहीं होने कारण (नहीं करना चाहिये फिर भी) पप्पू ने उसमें नजर दौड़ाई। सुषमा के पति ने खाड़ी देश से उसे यह पत्र भेजा था। नौकरी की परेशानियाँ, घर में पोताई करने की बातें, बच्चों की पढ़ाई जैसी बातें ही उसमें लिखी गई थी। पप्पू ने उसे वापस अन्य चिट्ठियों के साथ रख दिया।

सुषमा का घर थोड़ी दूरी पर है। वह घर का आंगन बुहार रही थी। पति की चिट्ठी पाकर उसने झाड़ू वहीं पर छोड़ दिया और वहीं खड़े होकर चिट्ठी पढ़ने लगी। उसने सुषमा की विकसित होती आँखों और गालों में पड़ते गढ़ढ़ों को देखा। उसे थोड़ा पानी चाहिये था। पैदल चलकर वह थक गया था। यह सोचकर वह वहीं खड़ा रहा कि सुषमा चिट्ठी पढ़ ले। परन्तु सुषमा एक बार पढ़ लेने के बाद दुबारा पत्र पढ़ने लगी। अरे यह क्या! इसमें इतना अधिक रस लेने की क्या बात है! पप्पू को आश्चर्य हुआ। घर की पुताई और खाड़ी देश की परेशानियाँ क्या इतनी मजेदार बातें हो सकती हैं?

कुछ देर इन्तजार करने के बाद पप्पू ने उससे पानी मांगा। बेटी, मामा को थोड़ा पानी दे दो। उसने भीतर की ओर देखकर अपनी बेटी को पुकारा परन्तु उसकी नजर पत्र में ही था। अब वह तीसरी बार पत्र को पढ़ रही थी। पप्पू दो गिलास पानी पीकर लौट रहा था तो सुषमा चौथी बार पत्र पढ़ने लगी थी।

एक ही पत्र को पप्पू एक बार भी नहीं पढ़ पाया और उसी पत्र को चार बार पढ़कर भी सुषमा का मन नहीं भरा। ऐसा क्यों हुआ? सुषमा का पति पप्पू का कोई नहीं लगता है। किन्तु सुषमा के लिये वह सबकुछ हैं।

एक व्यक्ति का परमेश्वर के वचन में प्रसन्न रहना परमेश्वर के साथ उसके संबंध के आधार पर होता है। यीशु ने कहा कि जो परमेश्वर से होता है वह परमेश्वर की बातें सुनता है। (यूह 8:47) यदि हम अपने पिता से प्रेम करते हैं तो हम उसके वचन पर ध्यान भी करेंगे। जो परमेश्वर में आनन्दित नहीं होता-वह परमेश्वर के वचन में भी आनन्दित नहीं हो सकता। किन्तु जिस प्रकार हमारा प्रियजन दूर से हमें पत्र लिखता है उसी प्रकार यदि हम परमेश्वर के वचन को देख पाते हैं तो हम उसमें आनंदित हो सकते हैं। एक पत्र को क्यों डाकिया एक बार भी पूरा नहीं पढ़ सका और सुषमा उसे पढ़ते पढ़ते नहीं थकी। सुषमा का पति राजेश पप्पू के लिये कोई नहीं है। किन्तु वह सुषमा का प्रिय पति है।

एक व्यक्ति के पत्र के द्वारा चाहे वह हमारे लिये कितना भी परिचित और प्रिय क्यों न हो उसे हम अधिक जानने लगते हैं। दूसरी तरह से कहें तो एक व्यक्ति अपने

शब्दों से अपने आपको प्रगट करता है। वह वापस में संबन्ध रखने के बावजूद राजेश के पत्र के शब्दों के द्वारा सुषमा उसे हर बार अधिक से अधिक जानने लगती है। एक पति होने के नाते राजेश का अपने प्रति प्रेम, घर के मुखिया होने के नाते उनकी जिम्मेदारियाँ, पिता होने के नाते उनके बच्चों के प्रति उत्सुकता।

हम परमेश्वर के वचन से इसी प्रकार परमेश्वर को अधिक जानने लगते हैं। हम से प्यार करने वाला परमेश्वर अपने पत्र के द्वारा वचन के द्वारा हमसे बातें करता है। प्रत्येक बार जब हम उसे पढ़ते हैं हम परमेश्वर को अधिक जानने लगते हैं। परमेश्वर अपने लोगों को अपने वचन के द्वारा अपने विषय नये नये प्रकाशन देता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि यह अक्सर परमेश्वर के गुणों को बखान करने वाली बातों के द्वारा हो। राजेश के पत्र में भी सुषमा मुझे तुम से बहुत प्यार है, परिवार के विषय में मेरी बहुत सारी जिम्मेदारियाँ है, बच्चों के प्रति मेरा बहुत लगाव है ऐसा कुछ लिखा होना आवश्यक नहीं है। परन्तु छुट्टियों में घर आने पर सुषमा को देने के लिये जो आभूषण उसने ख़रीद कर रखा है उसका वर्णन करने के द्वारा, घर की पोताई करने के लिये तुरन्त भेजे जाने वाले धन के विषय में बात करने के द्वारा, बच्चों के उच्च शिक्षा के लिये बैंक में जमा किये धन के विषय बात करने के द्वारा..... इन बातों को मूर्त रूप देने के लिये पिछले एक महीने से किये जाने वाले ओवर टाईम के बारे में सूचना देकर... विशेष घोषणायें न होने के बावजूद सुषमा राजेश के प्यार और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व को समझ सकी। यह उसकी सहायता करेगा कि वह राजेश के प्रति प्यार और समर्पण में बढ़ सके।

इसी प्रकार परमेश्वर भी वचन में किसी घोषणाओं के द्वारा स्वयं को प्रगट नहीं करता है। वह मनुष्य के प्रति या हमारे साथ अपने व्यवहार के द्वारा अपना प्रेम करता है। हमारा प्राणनाथ हमारे लिये जो कार्य किये या अभी जो कार्य कर रहा है उसने हमें जो प्रतिज्ञायें दी है वह हम उसके वचन के द्वारा जानने लगते हैं तो हम यह जानेंगे कि परमेश्वर हमारा ध्यान रखने वाला, हम पर करुणा करने वाला है। संपूर्ण धर्मशास्त्र मनुष्य के प्रति परमेश्वर के प्रेम का वर्णन है। उन सारे व्यवहारों में परमेश्वर अपने चरित्र को प्रगट करता है। उसके प्रत्येक वर्णन के द्वारा हम भी परमेश्वर के स्वभाव को-परमेश्वर को ही जान सकते हैं। उसे पढ़कर ग्रहण करें और उसमें आनन्दित हों। यह अपने प्राणनाथ को अधिक जानने और प्यार कर पाने का मार्ग है।

5 वचन का पठन और मनन

सुहास ने जैसे ही बाइबल खोला, उसकी नजर नहे० 12 अध्याय पर पड़ी। कुछ पदों को पढ़ने के पश्चात् प्रारंभ की बातें वह भूल गया। उसकी इच्छा थी कि अर्थ समझते हुए पढ़ा जाए, इसलिये वह और उसे एक बार और पढ़ने लगा। आधा पढ़ने के पश्चात् पुनः उसकी डोर टूट गयी।

सुहास पहली बार नहेम्याह की पुस्तक पढ़ रहा था। उसे वह कहीं से भी पठनीय नहीं लगा। समस्या कहाँ है? सुहास, नहेम्याह की या बन्धुवाई के बाद की घटनाओं की पृष्ठभूमि से परिचित नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि उसे - जिसने नहेम्याह की पुस्तक को एक बार भी पूरा नहीं पढ़ा है - बीच में से एक पद या एक अध्याय पढ़ना विशेष करके पुस्तक के अन्तिम हिस्से को पढ़ना रुचिकर लगे।

बाइबल के कई उद्‌बोधन बाइबल में ही वर्णित इतिहास - मानवीय अनुभवों - में परमेश्वर के हस्तक्षेप की व्याख्या के रूप में प्रकट होता है। तब फिर बिना इतिहास को जाने हम कैसे उसमें उपस्थित ईश्वरीय स्पर्श और उसके हर वर्णन को जान सकते हैं? इसलिये बाइबल को पढ़ने का पहला कदम उसे एक बार पूरा पढ़ लेना है। सब कुछ जानने के बाद का पठन नहीं बल्कि सब कुछ जानने के लिए पढ़ना...।

यह आवश्यक नहीं कि पहली बार पढ़ने पर हम बाइबल के आत्मिक अर्थों को समझ जायें। किन्तु यह प्रथम पठन हमें बाइबल के संसार में प्रवेश कराता है। और स्पष्ट रीति से कहें तो पहली बार पढ़ने के द्वारा हम कहानी को...इतिहास को जानने

लगते हैं। यह ऊपरी ज्ञान इतना मूल्यहीन भी नहीं है। इसी ज्ञान के द्वारा ही हम आत्मिक अर्थ के विभिन्न स्तरों में प्रवेश करते हैं।

जे.आई.पाईकर ने एक बार लिखा, पवित्रात्मा आपके ज्ञान पर ही काम कर सकता है।

पहली नजर में ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथन पवित्रात्मा को सीमित कर रहा है, परन्तु वास्तविकता क्या है?

मान लीजिये कि पवित्रात्मा एक कन्या से कहता है, कि मैं तुम्हें हुलदा नबिया की सेवा देता हूँ। इसे जानने के लिये कि हुलदा नबिया की सेवा क्या है, सबसे पहले जानना है कि हुलदा नबिया कौन है। यह जानना है कि वह किस प्रकार की सेवा किया करती थी। जो व्यक्ति ये दोनों बातें नहीं जानता है उससे परमेश्वर किस प्रकार से व्यवहार कर सकता है।

यहूदा के राजाओं में सबसे बड़ी जागृति के अगुवे योशियाह के दिनों में राजा हुलदा नबिया से परमेश्वर की इच्छायें पूछा करता था (2 इतिहास 34:19-38)।

इसी नबिया की भविष्यद्वाणी ही सुप्रसिद्ध योशियाह की आत्म जागृति का कारण बना। यद्यपि परमेश्वर एक स्त्री को हुलदा नबिया के समान अभिषेक करना चाहता है, फिर भी यदि यह बात उसे बताने के लिए यह आवश्यक है कि उसे हुलदा नबिया के विषय जानकारी हो। पवित्रात्मा हमारे ज्ञान पर कार्य करता है। परन्तु आज होता क्या है? चूँकि बाइबल की घटनायें और व्यक्ति हमारे लिये अजनबी होते हैं और इस प्रकार हम उन द्वारों को बन्द कर देते हैं जिनसे पवित्रात्मा हममें कार्य कर सकता था।

संभव है, आप कहें कि बाइबल की पृष्ठभूमि न जानने पर भी एक दिन अचानक धर्मशास्त्र खोलने पर उसके किसी वचन के द्वारा परमेश्वर ने आपसे बातें की। हो सकता है बिना पृष्ठभूमि जाने भी परमेश्वर ने किसी पद या पदांश के द्वारा आपको आनन्दित किया हो। किन्तु बिना पृष्ठभूमि जाने हम वचन की उस गहराई तक नहीं जा सकते हैं जहाँ तक परमेश्वर हमें ले जाना चाहता है।

अमित जब यशायाह भविष्यद्वक्ता की पुस्तक पढ़ रहा था तो एक विशेष भाग उसे आनन्दमय लगा। यशायाह 7:10-12 का भाग था वह।

फिर यहोवा ने आहाज़ से कहा, अपने परमेश्वर यहोवा से कोई चिन्ह मांग; चाहे वह गहिरे स्थान का हो, वा ऊपर आसमान का हो। आहाज़ ने कहा, मैं नहीं मांगने का, और मैं यहोवा की परीक्षा नहीं करूँगा।

अमित ने सोचा कि आहाज़ का विश्वास कितना महान है। उसने कामना की, काश कि उसके पास भी आहाज़ के समान विश्वास होता। विश्वास का होना अच्छी बात है, किन्तु आहाज़ के शब्दों पर परमेश्वर क्रोधित होता है।

इतिहास क्या कहता है? यहूदा के विरुद्ध अराम और इस्राएल एक साथ युद्ध के लिये तैयार होता है और तब आहाज़ भयभीत हो जाता है (यशायाह 7:1-2)। यशायाह नबी आहाज़ को सन्देश देता है कि परमेश्वर छुड़ाएगा, किन्तु आहाज़ तनिक भी परमेश्वर पर भरोसा नहीं रखता है। नबी को टालने के लिये उसने आधीन होने का अभिनय किया। यशायाह 7वाँ अध्याय और 2 राजा 12वाँ अध्याय पढ़ने पर इसे अच्छी रीति से समझा जा सकता है। परन्तु यदि हम इसकी पृष्ठिभूमि को न जानें तो वचन पवित्रात्मा की इच्छा के विपरीत हमारे हृदय में प्रवेश करेगा।

इन्हीं कारणों से, बाइबल के पूर्ण वाचन द्वारा प्राप्त होनेवाला अवलोकन वचन अध्ययन की प्राथमिकता है। हो सके तो वचन को एक बार बिना रुके पढ़ कर वचन की दुनिया से हमें परिचित हो जाना चाहिये। बाद में भी समय मिलने पर वचन को एक बैठक में पढ़ लेना चाहिये। उपवास के दिनों में इस प्रकार वचन पढ़ने के लिये समय निकालना अच्छा होता है। यह हमसे अर्थपूर्ण संबन्ध बनाने के लिये पवित्रात्मा के लिये मार्ग खोलता है।

ये सब बाइबल अध्ययन के प्राथमिक सबक हैं। किन्तु हमें इस बात को जानना है कि वचन को पढ़ना और वचन पर मनन करना दो अलग अलग बातें हैं। उसकी व्यवस्था पर रात दिन ध्यान करने वाला व्यक्ति ही धन्य होता है। (भजन 1:2)

ध्यान दीजिये कि सौम्या किस प्रकार बाइबल पढ़ती है। वह यूहन्ना का सुसमाचार छठवां अध्याय पढ़ रही है।

यहूदियों के फसह का पर्व निकट था। जब यीशु ने अपनी आँखें उठाकर एक बड़ी भीड़ को अपने पास आते देखा, तो फिलिप्पुस से कहा, हम इनके भोजन के लिये कहाँ से रोटी मोल लायें? उसने यह बात उसे परखने के लिये कही, क्योंकि वह आप जानता था कि वह क्या करेगा। फिलिप्पुस ने उसको उत्तर दिया, दो सौ दीनार की रोटी भी उनके लिये पूरी न होंगी कि उनमें से हर एक को थोड़ी थोड़ी मिल जाए। उसके चेलों में से शमौन पतरस के भाई अन्द्रियास ने उससे कहा, यहाँ एक लड़का है जिसके पास जौ की पान्च रोटी और दो मछलियाँ हैं; परन्तु इतने लोगों के लिये वे क्या हैं? यीशु ने कहा, लोगों को बैठा दो। उस जगह बहुत घास थी : तब लोग जिनमें पुरुषों की संख्या लगभग पान्च हजार की थी, बैठ गए। तब यीशु ने रोटियाँ लीं, और धन्यवाद करके बैठनेवालों को बाँट दीं; और वैसे ही मछलियों में से जितनी वे

चाहते थे बाँट दिया। जब वे खाकर तृप्त हो गए तो उसने अपने चेलों से कहा, बचे हुए टुकड़े बटोर लो कि कुछ फेंका न जाए। अत: उन्होंने बटोरा, और जौ की पान्च रोटियों के टुकड़ों से जो खानेवालों से बच रहे थे, बारह टोकरियाँ भरीं। (यूहन्ना 6:4-13)।

यीशु के कार्यों को पढ़ कर सौम्या को भी आश्चर्य हुआ। यीशु लगातार दूसरों से भिन्न दिख रहा है। यदि वह ईश्वर नहीं है तो क्या वह ऐसे सब कर सकता है? लोग क्यों इतनी सी बात को नहीं समझते हैं। परमेश्वर का अनुग्रह ही है कि इस यीशु से मुलाकात हुई। सौम्या ने बाइबल बन्द कर रख दिया और परमेश्वर की स्तुति करने लगी।

क्या सौम्या के बाइबल अध्ययन में कोई समस्या है? हम सोच सकते हैं कि इसमें कोई समस्या नहीं है। उसने यीशु के कार्यों को समझ लिया, परमेश्वर की स्तुति की किन्तु सौम्या ने केवल बाइबल को पढ़ा है, मनन नहीं किया है।

सौम्या ने वचन के भाग को समझ लिया, उस पर विचार किया, स्तुति की फिर भी यह सब कुछ मनन क्यों नहीं हो सकता है?

यहीं पर मनन शब्द के व्यवहारिक और आत्मिक अर्थ में अन्तर प्रकट होता है। किसी भी विचार को मनन कहने में हमें कठिनाई नहीं होती है, परन्तु थोड़ा और गहराई में सोचें। मित्रगण मिलकर बात करते समय यदि एक मित्र चुपचाप बैठा रहे तो हम उससे पूछते हैं, क्या हो गया? किस ध्यान में खो गए हो?

इसका अर्थ क्या है? मित्रों की बातचीत में सशरीर उपस्थित होने के बावजूद वह किसी और दुनिया में विचरण कर रहा था। उसका मन दूर कहीं किसी दूसरी दुनिया या किसी दूसरे काल में था। उसने दोस्तों को सुना भी नहीं, उन्हें देखा भी नहीं। वह ध्यान लगाए हुए था।

सौम्या ने बाइबल पढ़ कर उसे समझ तो लिया था और परमेश्वर की स्तुति भी की थी, फिर भी वे घटनायें उसके लिये दो हजार वर्ष पुरानी थीं। निश्चय ही वे दो हजार वर्ष पुरानी घटनायें ही है। फिर भी मनन की स्थिति में हम उन घटनाओं में प्रवेश कर जाते हैं (अथवा इतिहास वर्तमान में उतर आता है)।

मनन की स्थिति में हम बाइबल के समय में प्रवेश करने पर भी हम अपना स्थान छोड़ कर दूर नहीं जाते हैं। बाइबल हमारे सम्मुख खुला ही रहता है। किन्तु अक्षरों की दुनिया में हमने जिन घटनाओं को पढ़ा है, उनमें हम प्रवेश कर जाते हैं। वर्तमान काल से भूतकाल की ओर।

यूहन्ना का सुसमाचार 6वां अध्याय जब हमारे सम्मुख खुला पड़ा रहता है तभी हम पलिस्तीन के उस विशाल चरागाह में प्रवेश कर जाते हैं। वहाँ हम अपने लिये एक बैठने का स्थान खोज लेते हैं।

भीड़ के साथ बैठ कर हम भी उसकी बातें सुनते हैं। अभी आप भी उन पाति पाति बैठे लोगों के बीच में हैं। वह देखिये यीशु रोटी हाथ में लेकर आकाश की ओर देखकर प्रार्थना कर रहा है। अद्‌भुत! वह बढ़ रहा है!!!

शेष टुकड़ों को बटोरने के लिये शिष्यों की भीड़। पेट भर खानेवाले चेले उनके साथ शामिल क्यों नहीं होते हैं। वह देखिये... क्या यीशु आपकी ओर नहीं आ रहा है? वह आपके पास आ चुका है। यीशु आपसे बातें कर रहा है। क्या आप उसकी सांत्वना का अनुभव नहीं कर रहे हैं?

मनन की अवस्था में आप उन अक्षरों में वर्णित घटनाओं को अपना बनाते हैं। मनन करनेवाला कभी भी घटनाओं को देखता नहीं है बल्कि वह घटनाओं का भागीदार बनता है। इस कहानी में आप अचानक ही भीड़ में एक व्यक्ति या रोटी बाँटनेवाला बन जाते हैं, ...इससे बढ़कर आप घटनाओं के वर्णन से परे पहुंच जाते हैं। यहाँ पर भीड़ के उस मैदान से जाने के बाद भी आप वहीं पर रह जाते हैं। आप आगे भी प्रभु के निकटता का अनुभव कर रहे हैं। यह ज्ञान आपके बुद्धि या हृदय का नहीं परन्तु आत्मा में प्रगट की जाती है।

पहली बार या दूसरी बार पढ़ने पर हो सकता है आप इस प्रकार की एक मनन की अवस्था में प्रवेश न कर पाएँ। इसका एक मुख्य कारण यह है कि हम उस पृष्ठभूमि से सुपरिचित नहीं हुए होते हैं। एक सीमा तक लगातार पढ़ने के द्वारा हम मनन या ध्यान की अवस्था में प्रवेश करते हैं। बाइबल की एक - एक घटनायें हमारे हृदय की दीवारों पर चिपकी रहतीं हैं तो उस संसार में प्रवेश करना हमारे लिये आसान हो जाता है।

किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि लगातार पढ़ने के द्वारा हम ध्यान की अवस्था में पहुँच जाएँ। हो सकता है पढ़ना हमें इस स्वभाविक अध्ययन की ओर ले जाए, परन्तु ध्यान करने के लिये जान बूझकर किया जाने वाला प्रतिक्षण आवश्यक है। कई बार जोखिम यह होता है कि वचन के अध्ययन को हम वचन पर मनन समझ बैठते हैं।

वचन के अध्ययन में क्या होता है? सरसरी तौर पर पढ़ना छोड़कर हम अधिक विस्तृत रुप से बातें सीखते हैं। जिस भाग को पढ़ते हैं उसकी तुलना बाइबल के अन्य

भागों से करते हैं। हमें जो अनुभव प्राप्त हुये हैं उनके आधार पर हम पढ़े हुये भाग का विश्लेषण करते हैं। हम नई जानकारियाँ प्राप्त करते हैं। सत्य के नये नये आकाश पर हम पँहुचते हैं। हम नई प्रतिज्ञायें प्राप्त करते हैं। वह हमें आनन्दित करते हैं। एक बात स्मरण रखना है कि वचन का अध्ययन मूल रुप से हमारे मन और बुद्धि को स्पर्श करता है वा हमारे हृदय को उत्तेजना प्रदान करती है, परन्तु ध्यान करने में हम बुद्धि और आत्मा के स्तर को पार कर आत्मा के स्तर में प्रेवश करते हैं। हमारी आत्मा जागृत की जाती है। मनन करने में निश्चय ही हमारे मन और हृदय सांत्वना का अनुभव करते हैं, परन्तु वह सांत्वना आत्मा से नीचे की ओर उतरने वाला होता है। ध्यान के अनुभव की संतृप्ति आत्मा के स्तर पर होता है। वहाँ से चंगाई हृदय और मन में भरती है।

एक और बात! बाइबल की घटनायें हमें अपनी भयवहता के कारण नहीं परन्तु उनमें हमारे प्राणनाथ की दृश्य या अदृश्य निकटता के कारण उत्तेजित करती हैं। एक और रीति से कहें तो उसकी उपस्थिति हमारे अनुभवों को तीव्र बनाती है।

एक विश्व प्रसिद्ध अभिनेता ने एक बार किसी सम्मेलन में 23 वें भजन को बहुत ही नाटकीय अंदाज में प्रस्तुत किया। एक एक पद को पढ़ते समय उनके चेहरे के भाव बदलते रहे। सुननेवाले भावपूर्ण हो गये। कुछ ही क्षणों में श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट उस अभिनेता का अभिवादन करने लगे। अंत में उन्होंने पूछा, क्या कोई इसे दुहरा सकता है?

अभिनय सम्राट से मुकाबला करने के लिये कोई तैयार नहीं हुआ। अन्त में एक बार और प्रोत्साहित करने पर पीछे की पंक्ति से एक वृद्ध महिला उठकर आई।

प्रारंभ में कई लोग उसे तुच्छ दृष्टि से देख रहे थे, परन्तु जब वह 23 वां भजन बोलने लगी तो लोग निःशब्द होकर सुनने लगे। उस अभिनय सम्राट को आश्चर्यचकित करनेवाली थी उनकी प्रस्तुति। वे तो बस मुग्ध भाव से सुनते और देखते ही रह गये।

अन्त में पत्रकारों ने अभिनय सम्राट से पूछा, क्यों यह वृद्ध महिला आप से भी अधिक प्रभावशाली रीति से 23 वें भजन की प्रस्तुति कर सकी?

अभिनेता का जबाव था, मैं केवल 23 वां भजन जानता हूँ, पर वह 23 वें भजन में वर्णित चरवाहे को भी जानती है। यहाँ पर अध्ययन और मनन करने में अन्तर अधिक स्पष्ट होता है।

वचन के अध्ययन के दौरान हम विश्लेषण करने के द्वारा वचन के अर्थ को समझने लगते हैं तो मनन में हम वचन को अपने में ले आते हैं। उसे अपने भीतर प्रवेश कराते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मनन में हम वचन को अपना बनाते हैं। हम कभी भी स्वयं से प्यार करने वाले किसी के पत्र का विश्लेषण करके नहीं पढ़ते हैं। हम उसे उसी रुप से अपने में स्वीकार करते हैं। हम उस में प्रवेश करते और उसमें जीते हैं। पढ़ना, चरवाहे के विषय में हमें जानकारी देता है। मनन करना, हमें चरवाहे का भेड़ बनाता है। मनन करनेवाला चरवाहे के साथ हरी चराईयों की यात्रा प्रारंभ करता है। वह वहाँ शत्रु-भय के बिना चरता रहता है। चरवाहे के साथ वह झरने से निर्मल जल पान करता है। भूख से तृप्त होकर, बिना प्यास के वह छाया का अनुभव करता है। शान्तभाव से वह चरवाहे के साथ न्याय के पथ पर चलता रहता है। चरवाहे की लाठी उसे पंक्तिबद्ध चलने में सहायता प्रदान करती है। चरवाहे की निकटता-बड़ी भोज की चंगाई उसका लगातार अनुभव है। वह अपने सिर पर तेल का मला जाना महसूस करता है। उसके कटोरे के उमण्ड़ने से दूसरों की प्यास का बुझना उसे सन्तुष्टि प्रदान करती है। अपने पीछा करनेवाली नम्रता, भलाई और करुणा को वह देखता तो है परन्तु उसका निवास यहोवा के धाम में है।

हम सोच सकते हैं कि यह सब कभी कभी होनेवाली घटनायें है। परन्तु धर्मशास्त्र सिखाता है कि वचन पर रात दिन ध्यान करनेवाला मनुष्य धन्य है। यह कैसे हो सकता है? खाना पीना छोड़कर क्या हम वचन पढ़ते और मनन करते रह सकते हैं?

किन्तु रात दिन ध्यान करना एक दूसरे रीति से वास्तविक होता है। लगातार पढ़ने के द्वारा वचन हमारे हृदय में प्रवेश करता है। कोई एक भाग या एक घटना मात्र ही नहीं-हजारों बातें! कभी हमने बाइबल के उन अनुभवों में पढ़ने के द्वारा, ध्यान करने के द्वारा प्रवेश किया है। पढ़ने के दौरान हमने वर्तमान से अतीत में प्रवेश किए हैं। परन्तु अभी घटनायें पुनः वापस हो रहीं हैं। बाइबल के अनुभव अब हमारे अनुभवों में उतर आ रहा है। अभी अतीत वर्तमान में प्रवेश कर रहा है।

जीवन में हम कैसे-कैसे अनुभवों से गुजरते हैं! उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आपको अपनों द्वारा ठगे जाने का अनुभव हुआ है। रेगिस्तान की भीषण गर्मी...खाने पीने की वस्तुएँ समाप्त हो गई हैं....सहायता के लिए कोई नहीं है...मृत्यु के अलावा कुछ भी सामने नहीं है। वहाँ हमारे समान जीवन की एक दशा बाईबल में से हममें उतर कर आ रही है। हो सकता है यह हाजिरा का अनुभव हो। यदि पूर्व

में आपने मनन में वचन से मरुभूमि की ओर यात्रा किये हैं तो अब आपको मरुभूमि जाने की आवश्यकता नहीं है। आप मरुभूमि में हैं। अब वचन मरुभूमि की ओर आ रहा है। मरुभूमि की उस भीषण गर्मी में जब आप जलकर पिघल रहे हों तब उस प्रचण्ड आग की ओर एक झरना बहता हुआ आ रहा है। आनन्द के मारे आप चिल्ला उठते हैं। आप एक मग्गा पानी लेकर पीने की औपचारिकता नहीं निभाते हैं। आप उस झरने में उछल-कूद कर रहे हैं! अपना घड़ा भरकर आप अपने बेटे की ओर दौड़ पड़ते हैं। आप उसे पिलाते ही नहीं बल्कि उसे नहला भी देते हैं!!

यहाँ पर वचन आपके मनन की भूमि पर बारिश के रुप में उतर रहा है। यह मनन अध्ययन कक्ष में नहीं हो रहा है। अनुभवों की वास्तविकता में हो रहा है। लेकिन कभी एक समय आपने इसे अध्ययन कक्ष में जाना है। यह एक घनिष्ठ संबंध है।

समयांतराल में यह घनिष्ठता आपका निरंतर अनुभव बनता जाता है। अब वचन अध्ययन कक्ष से, कई बार तो हृदय की दीवारों से - रात दिन - जीवन में उतर आता है!! यह कितनी धन्य दशा है!!!

6 कान खोदना

इस घटना में तलाक की अर्जी स्त्री की ओर से आई थी। इसके लिये वह बहुत से कारण भी बताती है। एक कारण बहुत ही स्पष्ट था। विवाह हुए बारह वर्ष गुजर गए हैं। अभी तक पति ने उससे बातें नहीं की हैं।

एक ही बैठक में न्यायधीश ने फैसला सुनाया। तलाक की अनुमति दी जाती है।

फैसला सुनकर पति ने कहा, "माननीय अदालत, मुझे जो कहना है कृपया वह भी सुनिये।"

"तुम्हें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।" न्यायधीश का जबाव आया। "तुम गूंगे तो नहीं हो, जिस स्त्री से तुमने विवाह किया उससे इतने लम्बे समय से बातें नहीं की है। इसका क्या अर्थ है? तलाक की अनुमति दी जाती है।"

"यह मैं स्वीकार करता हूँ, माननीय अदालत। फिर भी विवाह के बारह वर्ष गुजरने के बाद भी मैंने अपने पत्नी से बातें नहीं की है इसका कारण सुनने के लिये माननीय अदालत को तैयार होना चाहिये।" पति ने कहा।

अदालत् ने कहा, "कारण चाहे कुछ भी उसे सही नहीं ठहराया जा सकता। फिर भी तुम कारण बता सकते हो।"

"माननीय अदालत्, इन लम्बे बारह वर्षों में मैं उससे बातें करने का प्रयास करता

रहा हूँ। पर मैं तब बात करता न जब वह चुप होती।"

लेकिन कई बार - शायद हमेशा - हम सुनने में नहीं परन्तु बोलने में अधिक तत्पर होते हैं। हमारी बातचीत की अधिकता के कारण हम श्रोता को पलट कर कुछ बोलने का अवसर ही नहीं देते हैं।

बाइबल कहती है, "हे मेरे प्रिय भाइयो, यह बात तुम जान लो : हर एक मनुष्य सुनने के लिये तत्पर और बोलने में धीरा और क्रोध में धीमा हो।" (याकूब 1:19)

बोलने में तत्पर और सुनने में धीमा होना हमारे स्वार्थी स्वभाव का प्रमाण है। हमारी यह चाहत कि लोग हमारी सुनें क्या इस बात का प्रमाण नहीं कि वे भी चाहते हैं कि उनकी बात भी कोई सुनें? यदि हम दूसरों के इस अधिकार का हनन करते हैं तो यह स्वार्थता के अलावा और क्या है?

"हर एक मनुष्य सुनने के लिये तत्पर और बोलने में धीमा हो" यह एक सामान्य शिष्टाचार की बात है फिर भी प्रेरित याकूब यहाँ पर इसका उपयोग एक अन्य अर्थ में करता है। प्रेरित का कहना है कि हरेक को वचन सुनने में तत्पर होना चाहिए। इस पद के पहले और बाद के पद इस सच्चाई को प्रगट करते हैं।

"क्योंकि हर एक अच्छा वरदान और हर एक उत्तम दान ऊपर ही से है, और ज्योतियों के पिता (जिसके बदलने की जरा सी भी गुंजाईश नहीं है) की ओर से मिलता है, और न अदल बदल के कारण उस पर छाया पड़ती है। उसने अपनी इच्छा से हमें सत्य के वचन के द्वारा उत्पन्न - हमें जन्म दिया - किया, ताकि हम उसकी सृष्टि की हुई वस्तुओं में से एक प्रकार के प्रथम फल हों।" (याकूब 1:17,18)। इसी के साथ अगला पद भी है। "हे मेरे प्रिय भाइयो, यह बात तुम जानते हो (कि सत्य वचन के द्वारा तुम उत्पन्न हुए हो और तुम उसकी सृष्टि में प्रथम फल हो यह पिता की इच्छा है): इसलिये हर एक मनुष्य सुनने के लिये तत्पर और बोलने में धीरा और क्रोध में धीमा हो" (याकूब 1:19)। सार यह है कि वचन के द्वारा जन्म लेने के कारण वचन पर ध्यान देने में हमें उत्सुक होना चाहिये।

यह जानने के लिये कि याकूब वचन सुनने के विषय में बात कर रहा है, पहले के पदों के समान बाद के पद भी साक्षी हैं। और वह वचन को नम्रता के साथ ग्रहण करने और वचन को कार्य रूप में परिणित करने के विषय में बात कर रहा है। (याकूब 1:21-25)

किन्तु हमारे साथ क्या होता है? हम अधिक बात करते हैं और बहुत कम सुनते हैं। सामान्य जीवन के समान परमेश्वर के सामने भी हम बहुत अधिक बोलते हैं, बहुत कम सुनते हैं। याकूब स्मरण दिलाता है कि यह ख़तरनाक है....क्यों?

जिस प्रकार बोलने में धीमा और सुनने में जल्दबाज होना चाहिये उसी प्रकार एक और बात में हमें धीमा होना चाहिये - कोप करने में (याकूब 1:19)। जो व्यक्ति सुनने में तेज नहीं होता है वह बोलने और कोप करने में तेज होता है। यह तो ऐसी सच्चाई है जिसे हम रोजमर्रा के जीवन में देखते हैं। किसी भी बात में कोप करनेवाला उच्चाधिकारी अक्सर ऐसा तब करता है जब वह अपने अधीनस्थ कर्मचारी की बातें पूरी नहीं सुनता है। जो शान्त होकर सुनता है वह शान्त होकर उत्तर देता है। कोप करने में उसे समय लगेगा।

यह सामान्य सिद्धांत वचन सुनने में भी प्रायोगिक है। जो व्यक्ति ठीक रीति से वचन को नहीं सुनता है वह जल्द फैसला सुनाता है। उसकी बातों में क्रोध होगा। इसका खतरा क्या है? हमारा कोप केवल हमारा है। उसमें परमेश्वर की धार्मिकता कार्य नहीं करती है (याकूब 1:20)। परमेश्वर की धार्मिकता परमेश्वर के कोप में ही प्रगट होती है। वचन न सुननेवाले व्यक्ति के फैसलों में मनुष्य का कोप प्रगट होता है।

दाऊद राजा ने पाप किया - बहुत ही घृणित पाप किया! अपने सैनिकों में एक सैनिक हित्ती ऊरिय्याह की पत्नी को अपना बनाने के लिए दाऊद ने ऊरिय्याह को मरवा दिया। यहाँ पर पाप, व्यभिचार और हत्या है। ऐसे समय पर एक दिन नातान नबी राजा के सम्मुख आकर एक कहानी सुनाता है। एक धनवान और एक दरिद्र था। धनवान के पास बहुत सारी भेड़े हैं। दरिद्र के पास एक ही भेड़ है। किन्तु मेहमान के आने पर धनवान अपनी भेड़ों में से एक भी न लेकर दरिद्र के भेड़ को लेकर भोजन का प्रबन्ध करता है। (2 शमूएल 12:1:4)

कहानी सुनने के बाद उस मनुष्य के प्रति **दाऊद का कोप** भड़क उठा। उसने फैसला सुनाया, वह मरने के योग्य है (2 शमूएल 12:5)।

मनुष्य का क्रोध जल उठा, किन्तु वहाँ **परमेश्वर की धार्मिकता** प्रगट नहीं हुई। इसका कारण है कि दाऊद ने सुनने से पहले ही फैसला सुनाने में जल्दबाजी किया। वास्तव में यह वचन दाऊद के लिये सन्देश था। नबी यह कहता भी है, नातान ने दाऊद से कहा, वह मनुष्य तू ही है (2 शमूएल 12:7)। किन्तु देर हो गई थी। भविष्यद्वक्ता का वचन सुनने से पहले ही दाऊद का कोप भड़क चुका था।

यदि हम वचन को ठीक रीति से नहीं सुनते हैं, तो हम दूसरों का न्याय करने में जल्दबाजी करेंगे। हम जोर जोर से चिल्लाएंगे, ओह... वह मनुष्य मरने योग्य है। किन्तु जब हम वचन को ठीक रीति से सुनते हैं तब हम क्रोध करने में धीमा होते हैं।

हम इस बात को समझ जाते हैं कि वचन दूसरों के लिये नहीं बल्कि मेरे लिये है। वचन सुनने के बाद क्रोध का स्थान पश्चाताप ले लेगा।

सत्य वचन को सुनकर उसके पीछे चलना उसकी सृष्टि में श्रेष्ठ होने के लिये अनिवार्य होने पर भी कई बार कई बातें हमें वचन सुनने से दूर करती है। याकूब इसके विषय में चेतावनी देता है।

"इसलिये (वचन सुनना सुगम करने के लिए) सारी मलिनता और बैर भाव की बढ़ती को दूर करके, उस वचन को नम्रता से ग्रहण कर लो जो हृदय में बोया गया और जो तुम्हारे प्राणों का उद्धार कर सकता है" (याकूब 1:21)।

यहाँ प्रेरित ने गन्दगी, दुष्टता जैसे शब्दों का दो अलग-अलग अर्थों में उपयोग किया है। गन्दगी का मूल शब्द (रुपारिया) कान की गन्दगी (रुपोस) नामक एक मूल शब्द से निकलता है। यहाँ याकूब मांग करता है कि जो कान की गन्दगी वचन को सुनने से रोकती है उसे निकाल दो।

कान यदि बन्द रहें तो सुनने में बाधा होगी। कई लोगों के बहरेपन को विशेष करके आंशिक बहरेपन का कारण कान की गन्दगी होती है। कान यदि अच्छी रीति से साफ किया जाए तो बहरापन आसानी से दूर किया जा सकता है। किन्तु ये बातें इतनी सरल है कि इसे बिना जाने लोग कान की गन्दगी को रख कर जिन्दगी को बेकार करते हैं।

यहाँ याकूब कान की उस गन्दगी के विषय में बात करता है जो केवल वचन श्रवण को बाधित करता है। स्पष्ट रीति से वचन बोलने पर भी हम उसे भीतर प्रवेश न देकर उसे बाहर ही रोक रखते हैं (कई बार तो ऐसा भी लगता है कि हम मानो वचन न सुनना पसन्द करते हैं। क्या आपने कुछ लोगों को यह कहते हुये नहीं सुना है कि अधिक वचन न सुनना ही अच्छा है। वचन सुनने पर उसे मानना भी तो पड़ेगा)। किन्तु प्रेरित कहता है कि हर एक गन्दगी वचन को सुनने से रोकनेवाली को दूर करने के लिये हमें जान बूझकर प्रयास करना है।

40 वें भजन में वर्णित प्रार्थना के एक हिस्से पर ध्यान दीजिए।

"मेलबलि और अन्नबलि से तू प्रसन्न नहीं होता, तू ने मेरे कान खोदकर खोले हैं। होमबलि और पापबलि तू ने नहीं चाहा। तब मैं ने कहा, "देख, मैं आया हूँ; क्योंकि पुस्तक में मेरे विषय में ऐसा ही लिखा हुआ है। हे मेरे परमेश्वर, मैं तेरी इच्छा पूरी करने से प्रसन्न हूँ; और तेरी व्यवस्था मेरे अन्त:करण में बसी है (भजन संहिता 40:6-8)।

इस बाइबल भाग में परमेश्वर के एक विशेष कार्य के विषय में बताया गया है। "तू ने मेरे कान खोद कर खोले हैं।"

ध्यान दें, यहाँ पर कान के कुण्डल पहनने वाले भाग को छेदा नहीं गया है बल्कि कान का भीतरी भाग खोदा गया है। व्यवस्थाविवरण (15:17) की पुस्तक में वर्णित आजीवन दासत्व के चिन्ह से इसे संबन्धित नहीं किया जाना चाहिये। कानों को खोदने पर ही भजनकार ने समझा कि वचन में तो उसी के विषय में लिखा हुआ है। तब "व्यवस्था उसके भीतर पहुँच गई" और "परमेश्वर की इच्छा पूरी करना उसे प्रिय लगा।"

कानों को खोदने से पहले और बाद के अनुभवों में अन्तर जानने के लिये आईए निम्नलिखित इब्रानी कविता को पंक्तिबद्ध पढ़ते हैं।

"मेलबलि और अन्नबलि से तू प्रसन्न नहीं होता; होमबलि और पापबलि तू नहीं चाहा।

तू ने मेरे कान खोदकर खोले हैं।

तब मैं ने कहा, "देख, मैं आया हूँ; क्योंकि पुस्तक में मेरे विषय में ऐसा ही लिखा है। हे मेरे परमेश्वर, मैं तेरी इच्छा पूरी करने से प्रसन्न हूँ; और तेरी व्यवस्था मेरे अन्तःकरण में बसी है" (भजन संहिता 40:6-8)।

कानों को खोदने से पहले भजनकार का विचार था कि परमेश्वर मेलबलि, अन्नबलि, पापबलि और होमबलि से प्रसन्न होता है। किन्तु कानों को खोदने के बाद व्यवस्था उसके भीतर प्रवेश कर गई। तब उसने समझा कि व्यवस्था में धर्म की उन कुछेक संस्कारों के विषय में नहीं परन्तु उसी के विषय में ही लिखा हुआ है।

आप पूछेंगे कि क्या वचन बलिदान के विषय में नहीं कहता है? हाँ, कहता है। किन्तु बलिदानों का निचोड़ क्या है? मनुष्य जो परमेश्वर की निकटता में सीधे तौर पर प्रवेश नहीं कर पाता है, उसकी असहाय अवस्था प्रत्येक बलिदान में प्रगट होता है। प्रत्येक बार वह करुणा के लिये प्रार्थना करता है। प्रत्येक बलिदान व्यक्ति को और अधिक नम्र बनाना है। किन्तु ऐसा होता नहीं है। क्योंकि बलिदान मार्ग न होकर लक्ष्य बन गया है।

परमेश्वर ने बलिदानों की स्थापना इसलिए नहीं की कि उसे बैल चाहिये। वह तो बलिदान चढ़ाने वाले के हृदय को चाहता है। किन्तु धर्म ने व्यवस्था को मनुष्य के हृदय में प्रवेश करने नहीं दिया। धर्म ने कहा, तू ईश्वर को बैल चढ़ा, बलिदान चढ़ाने से तू स्वतन्त्र हो जाएगा, फिर तू अपने रास्ते में अपने रास्ते....।

प्रायोजित कलीसिया हमेशा इसी प्रकार कहती है। वह हमेशा हमसे कहती रहती है कि कलीसिया के संस्कारों का पालन करना ही सबसे बड़ी बात है। व्यक्तियों के विषय में परमेश्वर की इच्छा को हमेशा भुला दिया जाता है।

प्रथाओं का पालन करनेवाले किसी व्यक्ति को धर्म एक नकली सुरक्षा का भाव प्रदान करता है। उस पर आश्रित होने वाले व्यक्ति के लिये वचन सुनना अनुष्ठानों का एक भाग मात्र होता है। संस्कारों के भाग के रूप में एक व्यक्ति सुसमाचार की महासभाओं में, बाइबल अध्ययन कक्षाओं में भाग लेता है, तब भी उसके कान छिदे नहीं होते हैं। व्यवस्था उसके कानों में आकर टकराई तो हैं फिर भी वह यह कहने लायक नहीं होता है कि व्यवस्था उसके भीतर है।

जिसके भीतर व्यवस्था होती है वह परमेश्वर की इच्छा को जानता है। परमेश्वर की इच्छा पूरी करना उसे प्रिय लगता है। "मैं आता हूँ" कह कर वह परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिये निकल पड़ता है। उसके बाद उसका कार्य महासभा में **परमेश्वर की धार्मिकता** का प्रचार करना होता है (भजन 40:9)।

उसने कहाँ से परमेश्वर की धार्मिकता को जाना? निश्चय ही उस व्यवस्था से जो उसके कानों को छेद कर उसके भीतर प्रवेश कर गई है। हमे स्मरण रखना है कि मनुष्य का क्रोध परमेश्वर की धार्मिकता का निर्वाह नहीं कर सकता है। सुनने के लिये - परमेश्वर का वचन सुनने के लिये - कानों को छेद कर उसे हृदय में प्रवेश कराने के लिये जो व्यक्ति तैयार होता है वही परमेश्वर की धार्मिकता को जान सकता है। परमेश्वर की धार्मिकता को जानने वाले व्यक्ति जीवन से मनुष्य का कोप अदृश्य हो जाता है; वहाँ पश्चाताप भर जाता है।

हमारी पूर्व धारणाएँ (जो समाज या कलीसिया द्वारा हममें डाली जाती हैं) हमें वचन सुनने और परमेश्वर की इच्छा में प्रवेश करने से रोकती हैं। किन्तु उसका सबसे बड़ा धोखा यह है कि हम जान नहीं पाते हैं कि वह हमें बाधित कर रहा है। इसलिये इसे स्वयं को धोखा देना कहा जाना चाहिए। स्वयं को धोखा देने की विशेषता यह है कि इसमें हम किसी और को नहीं परन्तु स्वयं को धोखा देते हैं। स्वयं को धोखा देने वाले एक भक्त के विषय में याकूब लिखता है।

"यदि कोई अपने आपको भक्त समझे और अपनी जीभ पर लगाम न दे पर अपने हृदय को धोखा दे, तो उसकी भक्ति व्यर्थ है।" (याकूब 1:26)।

यहाँ यह व्यक्ति किसी और को नहीं अपितु स्वयं को धोखा दे रहा है। वह एक कपटी भक्त नहीं है। कपटी जानता है कि वह नकली है, उसकी भक्ति नकली है। किन्तु यहाँ जिस व्यक्ति का वर्णन किया गया है वह सोचता है कि वह एक भक्त है। इस बात में उसे सन्देह नहीं है। क्योंकि उसके धर्म ने उसे निश्चयता दी है कि वह भक्त है।

किन्तु उसे नहीं मालूम कि वास्तविक भक्ति क्या होती है। क्योंकि वचन उसके भीतर नहीं है। कान छिदे नहीं होने के कारण वह नहीं जानता है कि व्यवस्था की पुस्तक में उसके विषय में क्या लिखा है। "हमारे परमेश्वर और पिता के निकट शुद्ध

और निर्मल भक्ति यह है कि अनाथों और विधावाओं के क्लेश में उसकी सुधि लें, और अपने आपको संसार से निष्कलंक रखें" (याकूब 1:27)। इस महान सच्चाई को वह व्यवस्था के पुस्तक से ही जान सकता है। यीशु कहता है कि व्यवस्था में अधिक महत्वपूर्ण न्याय, करुणा, विश्वस्तता जैसी बातें हैं।(मत्ती 23:23)

वचन भीतर प्रवेश न करने कारण बहुत से लोग प्रायोजित धर्म के व्यर्थ दावों में फँस कर स्वयं धोखा देते हैं। वे सोचते हैं कि वे भक्त हैं। कलीसिया इसे सही भी ठहराती है। वास्तव में परमेश्वर की मुख्य धारा से दूर होने पर भी वे हम स्वयं से कहते हैं कि मैं परमेश्वर के मार्ग पर ही हूँ।

यीशु के पास आनेवाले धनी नौजवान के साथ भी यही बात हुई थी। (मरकुस 10:17-22) उसका कहना था कि "व्यवस्था का तो मैं पूरी रीति से पालन करता हूँ, वह भी बचपन से ही।" उसका तर्क था कि अब परमेश्वर की कोई ऐसी इच्छा बाकी नहीं है जिसे वह पूरा नहीं करता। उसका विचार था कि वह भक्त है।

किन्तु यीशु कहता है, "तू ने व्यवस्था की पुस्तकों की व्याख्या धर्म की भाषा में की है। वह तुम्हारे सिर के ऊपर है, किन्तु वह कानों को छेद कर भीतर प्रवेश नहीं कर सका है। वचन की आत्मा तुम्हारे भीतर नहीं है। तू ने अभी कहा, तू व्यवस्था का पालन करता है यह सही नहीं है। तुम में एक कमी है। क्या तू अपने मित्र को अपने समान प्रेम करता है? यदि ऐसा है तो फिर क्यों तुम अपनी संपत्ति को दरिद्र लोगों में नहीं बांट देते। अपनी संपत्ति को बेचकर दरिद्रों को दे दो। उसके बाद आकर मेरे पीछे हो ले" (मरकुस 10:21)।

वह जवान कानों को छेदने के लिये तैयार नहीं था। वचन के अक्षर उसके मन में थे, किन्तु वचन की आत्मा उसके भीतर नहीं थी। मरकुस लिखता है कि इस वचन से उदास होकर वह चला गया। (मरकुस 10:22)।

प्रेरित पूर्व धारणा रुपी गन्दगी को वचन को सुनने से रोकनेवाला मुख्य कारण ठहराता है। वचन की आत्मा को स्वीकार करने के लिये - विभिन्न प्रकार की प्रथाओं द्वारा प्राप्त होनेवाली नकली संतृप्ति के बाहरी छिलकों को तोड़कर वचन सामर्थ के साथ प्रवेश करने के लिये हमारे कानों को छेदने हेतु हम परमेश्वर से प्रार्थना करें।

याकूब वचन श्रवण के एक और शत्रु के विषय में कहता है। प्रेरित उसे दुष्टता की अधिकता निरूपित करता है।

७ वचन Vs पाप

उस प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में बेटे को प्रवेश मिलने पर माँ बहुत ख़ुश हुई। बेटा घर से जा रहा है। अब विश्वविद्यालय में कई अच्छे घरानों के बच्चों के साथ वह पढ़ाई करेगा। होशियार है वह! पढ़ाई पूरी होने पर उसे इंग्लैण्ड में नौकरी मिलने में असुविधा नहीं होगी। तभी माँ ने सोचा। बेटा उसकी निरन्तर निकटता से दूर जा रहा है। विद्याध्ययन के दिनों के बाद नौकरी के दिन...। अब तक जैसा चलता रहा वैसा उसे हर एक बात के लिये उपदेश देने और सांत्वना देने के लिये वह उसके पास हो यह जरूरी नहीं है। हो सकता है उसके मित्रगण धनी हों किन्तु क्या वे उसे सही उपदेश देकर आगे बढ़ा सकते हैं? हो सकता है उसके अध्यापकगण भी ऐसा न कर पाएँ। जीवन के चौराहों पर उसे मार्गदर्शन देने के लिये कौन है? घोर अन्धकार के समय प्रकाश बनने के लिये कौन है?

जिस दिन उसे विश्वविद्यालय की ओर यात्रा करनी थी, माँ ने उसे एक उपहार दिया। जॉन, यह एक पुस्तक है। या तो यह तुम्हें पाप से अलग रखेगी या फिर पाप तुम्हें इस पुस्तक से अलग रखेगा।

युवा जॉन् वेस्ली नामक युवक को उसकी माता ने बाइबल धर्मशास्त्र उपहार स्वरूप दिया था। उन दिनों बाइबल दुर्लभ हुआ करती थी। यदि बहुत मूल्य चुका कर माँ ने उन्हें यह उपहार दिया था तो वह कभी व्यर्थ भी नहीं हुआ। उस पुस्तक की अग्नि

ने जॉन् वेस्ली की सहायता की कि पाप के ठण्डेपन को महसूस किये बिना वह जी सके। वेस्ली के माध्यम से यूरोप में हजारों लोगों ने वचन की शक्ति के द्वारा पाप को अपने जीवन से बाहर रखा। जॉन् वेस्ली धर्मशास्त्र के द्वारा व्यवस्थित जीवनचर्या अपनाने के लिये हजारों लोगों को प्रेरणा देनेवाले मेथोडिस्ट संस्था का आरंभ कर्ता था।

"या तो वचन हमें पाप से अलग रखेगा या फिर पाप हमें वचन से अलग रखेगा।"

वचन और पाप दोनों किस प्रकार एक दूसरे के विपरीत हैं, इसकी तार्किक व्याख्या संभव तो नहीं है फिर भी व्यवहारिक रीति से यही बात प्रगट होती है। एक शिष्य में पाप की उपस्थिति होने पर तुरन्त ही उसमें प्रार्थना, भविष्यद्वाणी या अन्य सेवकाई में कमी नहीं दिखती है परन्तु वचन के ध्यान और मनन में कमी दिखती है। आपने अवश्य ही पाप में जीने वाले कई लोगों के द्वारा 'अदभुत' काम होते हुए देखे होंगे?

बहुत से लोग पूछते हैं कि कैसे पाप और भविष्यद्वाणी दोनों साथ साथ चल सकते हैं? आज यह बहुतों की समझ में नहीं आनेवाली एक समस्या है।

चट्टान पर नींव डालने वाले व्यक्ति के दृष्टांत (मत्ती 7:21-27) पर ध्यान दीजिए।

अन्तिम दिनों में बाहर निकाले जाने वाले कई लोग हे प्रभु, हे प्रभु कहकर उसके पास आएँगे। उनके दावे बहुत रोचक हैं।

"हमने तेरे नाम से **भविष्यद्वाणियाँ** कीं, तेरे नाम से **दुष्टात्माओं को निकाला**। उसके नाम से **आश्चर्यकर्म भी किये।**"(मत्ती 7:22)।

वे भविष्यद्वाणी करनेवाले, दुष्टात्माओं को निकालनेवाले और आश्चर्यकर्म करनेवाले रहे हैं, वह भी प्रभु के नाम से फिर भी प्रभु ने उन्हें बाहर निकाल दिया।

यीशु नहीं कहता है कि वे झूठ बोल रहे हैं। उनकी बातें सच हो सकती हैं, वे भविष्यद्वक्ता, दुष्टात्माओं को निकालनेवाले और आश्चर्यकर्म करने वाले हो सकते हैं लेकिन प्रभु इन सब बातों में रुचि नहीं रखता है। वे अधर्म करनेवाले हैं (मत्ती 7:23)। अधर्म करनेवालों को प्रभु की शाश्वत उपस्थिति में प्रवेश नहीं है।

यहाँ पर हम देखते हैं कि अधर्म करनेवाला आश्चर्यकर्म भी करता है। यह कैसे संभव हो सकता है?

आत्मिक वरदान परमेश्वर के दान हैं। दान, दाता की कृपा से ही प्राप्त होता है। वह हमारी पवित्रता के बदले में परमेश्वर का प्रतिफल या ईनाम नहीं है। किन्तु उसे देने वाले की इच्छा है कि हम उसका उपयोग कर पवित्रता में आगे बढ़ें। परमेश्वर

ने हमें जो वरदान दिया है - जो हमें भविष्यद्वाणी करने, दुष्टात्माओं को निकालने, आश्चर्यकर्म करने के लिये हमें योग्य बनाता है - उनका उपयोग जब परमेश्वर द्वारा इच्छित पवित्रता बिना किया जाता है तब परमेश्वर दुःखित होता है। फिर भी परमेश्वर को दुःखी करके कई शिष्य ऐसा करते हैं। आश्चर्यकर्म और अधर्म दोनों को वे एक साथ लिए चलते हैं। परमेश्वर के दुःख की उन्हें कोई परवाह नहीं रहती है।

एक व्यक्ति जिसे परमेश्वर ने वरदान दिए हैं, यदि एक दिन पाप में गिर जाए तो परमेश्वर अगले ही पल उससे उस वरदान को वापस नहीं ले लेता है। हमारे बच्चों में से किसी के गलती करने पर अगले ही पल हम उनसे वे सब चीजें वापस नहीं माँगते हैं जो हमने उन्हें दिए हैं। हम पापी होकर भी जब ऐसा नहीं करते हैं तो क्या हमारा स्वर्गीय पिता ऐसा करेगा?

धर्मशास्त्र सिखाता है कि हमारी अविश्वासयोग्यता के बावजूद परमेश्वर विश्वासयोग्य ठहरता है (2 तीमुथियुस 2:13)। परमेश्वर अपने बच्चों के वापस लौटने का धैर्य पूर्वक इन्तजार करता है। परमेश्वर की इच्छा है कि उसने जिसे वरदान दिये हैं वह वर्तमान पाप को छोड़कर वापस आए और पवित्रता के साथ परमेश्वर की सेवा जारी रखे। किन्तु यह व्यक्ति इस बात की परवाह नहीं करता है कि परमेश्वर धैर्यपूर्वक, दुखपूर्वक उसका इन्तजार कर रहा है। परमेश्वर द्वारा बाट जोहने के इस समयान्तराल में वह व्यक्ति पाप और परमेश्वर की सेवा दोनों एक साथ करता है। कई लोग परमेश्वर की क्षमा और उसकी विश्वस्तता का उपयोग वापस आने के लिए नहीं परन्तु ढिठाई के लिये करते हैं। उन्होंने दाता से बढ़कर दान से प्यार किया है।

वे सोचते हैं कि हम आश्चर्यकर्म करनेवाले हैं इसलिये परमेश्वर की मुख्य धारा में ही चल रहे हैं। वरदानों को वे अब दान के रूप में नहीं परन्तु अपनी पवित्रता और सामर्थ्य के बदल में दिया गया प्रतिफल समझते हैं। इसीलिए वे बिना शंका के प्रभु से और अधिक देने की प्रार्थना करते हैं। वे इस बात को स्वीकार नहीं कर पाते हैं कि उन्हें बाहर निकाल दिया जा रहा है। इस विषय में उनका सोचना था कि यह कभी भी संभव नहीं है।

यह स्वयं को धोखा देने का एक और दृश्य है। पिछले अध्याय में हमने देखा कि धार्मिक अनुष्ठानों से मिलनेवाली नकली संतृप्ति किस प्रकार हमें परमेश्वर की इच्छा पूरी करने से रोकती है। प्रत्येक सिद्धांतवादी (कलीसिया की परम्परागत बातों को अत्यधिक महत्व देनेवाले) का यही विचार है कि वह परमेश्वर की मुख्य धारा में - परमेश्वर की इच्छा के मार्ग में - ही है। किन्तु यह व्यर्थ विचार परमेश्वर के वचन

के लिये कानों को न छेद कर और वचन की आत्मा को भीतर प्रवेश करने के अनुमति न देकर हमें धोखा देते हैं।

एक सिद्धान्तवादी द्वारा स्वयं को धोखा देने से भी भयावह होता है उस व्यक्ति द्वारा स्वयं को धोखा देना जो वरदानों और अधार्मिक कार्यों को साथ-साथ लिए चलता है। इस व्यर्थ विचार के कारण कि अनुग्रह के वरदान उनकी पवित्रता के बदले में परमेश्वर द्वारा दी गई स्वीकार्यता है, जब जब उनके द्वारा आश्चर्यकर्म होते हैं तब तब यह विचार उन पर हावी होता है कि कि वे परमेश्वर के द्वारा स्वीकार किये गये हैं।

आत्मिक वरदान का प्रदर्शन करनेवाले भी क्यों बेहिचक अधार्मिक कार्य करते हैं, विषय पर एक दिन बातचीत के मध्य पास्टर पी.जी. वर्गीस ने कहा, बहुत ही ईमानदारी और आत्मा की भरपूरी में जीने वाले व्यक्ति के जीवन में यदि एक पाप आ जाता है, तो सबसे पहले वह इस बात से भयभीत होता है कि कहीं उसे प्राप्त अभिषेक को वह खो तो नहीं दिया है। इसे परखने की कसौटी अन्यभाषा को ही तो माना जाता है। तत्पश्चात आराधना के दौरान, प्रार्थना के दौरान अन्य लोग जब आत्मा में भरकर अन्य भाषाओं में बात करते हैं तो उसे यह जानने की उत्सुकता रहती है कि क्या वह भी अन्य भाषा में बात कर पाता है या नहीं। यदि अन्यभाषा में बात कर सका तो तुरन्त ही वह इस बात के प्रति निश्चित हो जाता है, कि "हाँ, मेरा अभिषेक मुझ पर बरकरार है।" उसके पश्चात् उस पाप को करने में, करते रहने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती है। धीरे-धीरे उसके भीतर अनेक अधर्म की बातें प्रवेश करने लगती हैं। यद्यपि उसने आत्मिक जीवन का प्रारंभ सच्चाई के साथ किया था फिर भी आत्मा के भरपूर होने के बावजूद अगर अंत एक अधार्मिक व्यक्ति के रूप में है तो क्या लाभ..?

अधार्मिकता और अद्भुत कार्य को तो एक साथ ले जाया जा सकता है परन्तु अधार्मिकता और वचन को एक साथ लेकर चलना असंभव है। पाप में गिरने वाला शिष्य सबसे पहले वचन को छोड़ देता है। पाप हमें वचन से दूर करता है। इसलिये चार्ल्स स्पर्जन ने कहा है कि "यदि आपके बाइबल पर धूल जमी है तो इसमें सन्देह की गुंजाईश नहीं है कि आप एक विश्वासत्यागी हो गए हैं।" पाप करते रहने वाला व्यक्ति वचन में आनन्दित नहीं हो पाता है। सम्भव है कि वह वचन को खोलकर रखे या उसे पढ़ता रहे परन्तु वचन उसके भीतर प्रवेश नहीं करता है। वचन भीतर होने

की दशा उसके लिये अनजानी होती है। जिसके भीतर व्यवस्था नहीं होती है वह पाप में बना रहता है।

आत्मिक वरदानों को अपनी पवित्रता की स्वीकार्यता मानकर स्वयं को धोखा देनेवाले लोगों के लिये परमेश्वर का सन्देश यह है....."पेड़ अपने फल से पहचाना जाता है, उसे प्राप्त खाद के द्वारा नहीं।" (मत्ती 7:24)

भविष्यद्वक्ता, आश्चर्यकर्म करनेवाले, दुष्टात्माओं को निकालनेवाले जब अधार्मिक जीवन में गिर जाते हैं तब वचन पर जीवन की नींव डालने वाले लोग आन्धी-तूफान या जोर की बारिश में भी बिना गिरे प्रभु की शाश्वत शान्ति में प्रवेश करते हैं। क्योंकि उन्होंने अधार्मिकता में जीवन व्यतीत नहीं किया है। प्रभु कहता है कि वचन ने उन्हें अधार्मिकता से दूर रखा है। "इसलिये जो कोई मेरी ये बातें सुनकर उन्हें मानता है वह उस बुद्धिमान मनुष्य की नाई ठहरेगा जिस ने अपना घर चट्टान पर बनाया है" (मत्ती 7:24)। वचन के द्वारा ही उसे धार्मिकता और अधार्मिकता में भेद पता चलता है।

जिस प्रकार पाप हमें वचन से दूर रखता है, ठीक उसी प्रकार यह भी सच है कि वचन हमें पाप से दूर रखता है। इसलिये जॉन वेस्ली की माता ने उनसे कहा था कि "या तो यह पुस्तक तुम्हें पाप से अलग रखेगी या पाप तुम्हें इस पुस्तक से अलग रखेगा।"

इस्राएल के राजाओं को प्रभु द्वारा किया गया एक स्पष्ट सन्देश है। "... जब वह राजगद्दी पर विराजमान हो, तब इसी व्यवस्था की पुस्तक, जो लेवीय याजकों के पास रहेगी, उसकी एक नकल अपने लिये कर ले। और वह उसे अपने पास रखे, और अपने जीवन भर उसको पढ़ा करे, जिस से वह अपने परमेश्वर यहोवा का भय मानना, और इस व्यवस्था और इन विधियों की सारी बातों के मानने में चौकसी करना सीखे; जिस से वह अपने मन में घमण्ड करके अपने भाइयों को तुच्छ न जाने, और इन आज्ञाओं से न तो दाहिने मुड़े और न बाएँ; जिस से कि वह और उसके वंश के लोग इस्राएलियों के मध्य बहुत दिनों तक राज्य करते रहें" (व्यवस्थाविवरण 17:18-20)।

यहोवा के प्रति पाप न करने के लिये अनिवार्य बातों में सबसे प्रथम, राजा के पास व्यवस्था की पुस्तक की प्रतिलिपि का होना है। दूसरी बात उसे व्यवस्था को जीवनभर पढ़ना है। वचन को अपना बनाकर उसे लगातार पढ़ने और ग्रहण करनेवाला व्यक्ति ही पाप से दूर रहता है।

एक सौ उन्नीसवां भजन वचन का गीत है। उसमें का एक एक शब्द मुँह को मीठा

लगता है। इसे जानने के लिये 119 वां भजन एक बार पूरा पढ़कर देखिए (बहुत बड़ा भजन होने के कारण कई बार हम उसे नहीं पढ़ते हैं)। इस भजन में वचन और पाप किस प्रकार से एक दूसरे के विपरीत हैं इस बात को बताने के लिये कई एक चित्रण दिए गए हैं।

पहले पद को ही उदाहरण के लिये रूप में लें। "क्या ही धन्य हैं वे जो ...यहोवा की व्यवस्था पर चलते हैं!"

प्रारंभ में ही भजनकार कहता है कि वचन ही निष्पाप होने की दशा प्रदान करता है। सही रीति से यदि अनुवाद किया जाए तो इसे इस प्रकार कहा जा सकता है, "जिन्होंने अपने मार्गों को निःष्पाप किया हो, जो यहोवा की व्यवस्था पर चलते हैं,"। वचन का अनुसरण करने की व्यवहारिक स्थिति निःष्पाप होना। वचन का अनुसरण करने वाले निःष्पाप हुए बिना नहीं रह सकते हैं। इसलिये भजनकार एक युवक से कहता है,

"एक युवक (Young Man - 'लड़का' की तुलना में अधिक उपयुक्त शब्द 'युवक' शब्द है) किस प्रकार अपने मार्ग को निष्कलंक रख सकता है?" परमेश्वर के वचन के द्वारा अपने मार्गों की चौकसी करने से (पद 9)।

व्यवस्था एक युवक की रखवाली करता है कि पाप के मार्ग पर उसके कदम फिसलने न पाएं। वचन पाप के विरूद्ध खड़ा रहता है। वह उसके पाँव के लिये दीपक और मार्ग के लिये उजियाला है (पद 105)।

तेरे प्रति पाप न करने के लिये मैंने तेरे वचन को अपने हृदय में रख छोड़ा है (पद 11)। यह कहते हुए भजनकार पुनः हमें स्मरण दिलाता है कि वचन और पाप दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं। वह पुनः कहता है कि "मुझ को झूठ के मार्ग से दूर कर; और करूणा करके अपनी व्यवस्था मुझे दे" (पद 29)। व्यर्थ मार्ग और परमेश्वर का वचन यहां पर भी एक दूसरे के विपरीत हैं।

भजनकार जो कहता है कि वह पाप न करने के लिये वचन को हृदय में संग्रहित कर रखा है, आगे कहता है, मैंने अपने पाँवों को हर एक बुरे रास्ते से रोक रखा है (पद 101)। यह पद हमें समझाता है कि जिस प्रकार वचन हमें पाप से दूर करता है, उसी प्रकार पाप भी हमें वचन से दूर करता है। गलत मार्गों पर यदि मेरा पाँव चले तो वचन

पर चलना मेरे लिये असंभव हो जाता है। यदि मैं व्यवस्था से दूर रहता हूँ तो दुष्टता करना मेरे लिये प्रशंसनीय बात हो जाती है (नीतिवचन 28:4)।

दुष्टता और वचन के एक दूसरे से विपरीत दिशाओं में होने के कारण याकूब दुष्टता की अधिकता को छोड़ देने के लिये कहता है। "इसलिये सारी मलिनता और बैरभाव की बढ़ती को दूर करके, उस वचन को नम्रता से ग्रहण कर लो, जो हृदय में बोया गया और जो तुम्हारे प्राणों का उद्धार कर सकता है" (याकूब 1:21)।

'दुष्टता की अधिकता' प्रयोग पर ध्यान दीजिए। दुष्टता की अधिकता को यहाँ पर एक विशेषण के रूप में बताया गया है। यह कैंसर के समान फैलता जाता है।

कैंसर की विशेषता को तो आप जानते ही हैं। यदि एक कोशिका में कैंसर होता है तो वह वहीं तक सीमित नहीं रहता है। चारों ओर की एक एक कोशिका को वह अपने चपेट में लेते जाता है। उसका कार्य शब्द रहित होता है। किन्तु जिस कोशिका में कैंसर होता है उसे ढूंढ़ कर यदि नाश न किया जाए तो वह संपूर्ण जीवन को ही नाश करने की दिशा में बढ़ जाता है। आत्मिक जीवन में भी दुष्टता की छोटी कोशिकाओं को ढूंढ़ कर यदि नाश न किया जाए तो वह अगली कोशिका को भी अपनी चपेट में ले लेता है और अन्त में आत्मिक मृत्यु का ही कारण बन जाता है। अमन के जीवन में भी यही हुआ।

हम कह सकते हैं कि अमन आत्मिक जीवन में बहुत उत्साही था। कलीसिया की हर एक गतिविधि में वह आनन्द के साथ सहभागी होता था। इसी दौरान एक दिन दोस्तों की बर्थ डे पार्टी में उसे शामिल होना पड़ा। दोस्त के जीजा ने जर्मनी से जो महँगी व्हिस्की लाया था, वह उनकी पार्टी का मुख्य आकर्षण था। एक बारगी तो उसने कहना चाहा कि वह यीशु का विश्वासी है और शराब से दूर रहता है, फिर भी दोस्तों ने उसे प्रलोभन दिया कि यह एक मुश्किल से मिलनेवाली व्हिस्की है और इसे पीना तो किस्मत की बात है। वह उस प्रलोभन से बच न सका। एक प्याला उसने भी थाम लिया।

उस दिन अमन अपराधबोध के साथ घर वापस पहुँचा। बिस्तर पर गिरने से पहले उसने प्रार्थना किया कि हे परमेश्वर मुझे क्षमा कर। उसके बाद वह सो गया।

अगले दिन इतवार था। सुबह उठने पर कल की बातें उसे फिर से स्मरण हो

आईं। उसे बहुत दुःख हुआ। ओह! मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।

पिछली शाम को याद कर वह बिस्तर पर ही पड़ा रहा....। अन्ततः आराधना का समय हुआ तो वह सोचने लगा। जाना चाहिए कि नहीं? पाप करने के बाद आराधना में जाना उचित है या नहीं?

पहले तो उसने सोचा कि आराधना में नहीं जाना है। किन्तु नहीं जाने पर सबको कारण बताना पड़ेगा, इसलिये वह आराधना में जाने का निर्णय लिया। कुछ भी हो आज गवाही नहीं दूँगा। इसलिये पद ढूंढने के लिये उसने बाइबल भी नहीं खोला। उसे स्मरण आया कि कल भी उसने बाइबल नहीं पढ़ा था।

आराधना में उसे एक और रुकावट का अहसास हुआ। वह दुविधा में पड़ गया कि उसे प्रभु भोज में भाग लेना चाहिए या नहीं। अन्ततः लोगों के सवालों से बचने के लिये उसने प्रभु भोज के लिये हाथ बढ़ाया। आराधना के अन्त में यह सोचकर वह खुद को तसल्ली देने लगा कि अयोग्य होने के बाद भी प्रभु भोज लेने से उसे कुछ भी तो नहीं हुआ।

शाम को अमन के दोस्त ने उसे फोन किया। उसने कहा, "एक बोतल व्हिस्की और बाकी है,... आज की शाम उसके साथ बिताते हैं।"

अमन ने मना करना चाहा, "नहीं दोस्त, अभी तो कल का.....।"

"कल कुछ हुआ क्या? आसमान तो टूट कर नहीं गिर पड़ा ना? तू आ...।" कहकर दोस्त ने फोन रख दिया।

"अरे, आओ आओ अमन, चलो एक राउण्ड हो जाए।" दोस्तों ने उसे निमन्त्रण दिया।

"अरे नहीं....ताश खेलना तो हमारी कलीसिया में....।" अमन ने मना करना चाहा।

"शराब पीने से जब परमेश्वर ने क्रोधित नहीं हुआ, तो जरा सा पत्ते खेल लेने में क्या हर्ज है? आ... बैठ।"

"फिर भी.... यह तो जुआ है न?"

"इसमें क्या जुआ है? यहाँ कोई भी पैसा रखकर नहीं खेल रहा है," दोस्तों ने कहा।

वह उनके साथ बैठकर ताश खेलने लगा। उस रात वह अधिक अपराधबोध के साथ बिस्तर पर लेटा। सोने से पहले उसने प्रार्थना की, किन्तु उसे बाइबल पढ़ने की इच्छा नहीं हुई।

बाद में एक दिन अमन ने पैसा रखकर ताश खेला। धूम्रपान भी साधारण सी बात हो गई। आज वह पैसा खर्च कर शराब भी पीता है।

कलीसियाई बातों में अधिक सहभागी न होने पर भी वह आराधना में जाता है। वह जानता है कि वह कई एक गलत काम करता है। एक परम्परा के समान वह प्रतिदिन प्रार्थना किया करता है। किन्तु उसके बाइबल पर धूल जमने लगी है।

अमन ने छोटे रूप में गलती करना प्रारंभ किया था। शराब पीना दिन में एक प्याला तक सीमित नहीं रहा। वह बढ़कर शराबखोरी और पत्ते खेलना और जुआ खेलने तक पहुँच गया। आगे चलकर उसकी जिन्दगी बिखर गई। आत्मिक रूप से भी वह विनाश के कगार पर आ गया।

हर एक दुष्टता इसी प्रकार होती है। दुष्टता एक तक ही सीमित नहीं रहता है। वह कैंसर के समान जीवन की सभी स्थितियों को अपने चपेट में ले लेती है। चूँकि दुष्टता वचन से आपको दूर करती है इसलिये याकूब दुष्टता की अधिकता रूपी कैंसर को छोड़कर वचन को स्वीकार करने के लिये कहता है।

याकूब यूँ ही यह नहीं कहता है। प्रेरित याकूब वचन को सुनने से रोकने वाली पूर्व धारणा रूपी कान की गन्दगी को और वचन से हमें दूर करने वाली कैंसर समान दुष्टता के साथ निर्भयता से व्यवहार करने के लिये कहता है। साधारण सा व्यवहार उसे जड़ से नहीं उखाड़ फेंकता है। उन्हें धोने से काम नहीं चलेगा। उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकना है (याकूब 1:21)। जिस प्रकार सांप केंचुल उतारता है, ऐसा एक शब्द यहां पर प्रयोग किया गया है। केंचुल उतारनेवाला सांप केंचुल का बाकी हिस्सा नहीं रखता है। सांप द्वारा केंचुल उतारने के समान पूर्व धारणा रूपी कान की गन्दगी और कैंसर समान दुष्टता को हमें उतार फेंकना है।

अगले कदम पर ध्यान दीजिए। यदि वचन प्रवाह को रोकने वाली पूर्व धारणा और दुष्टता हट जाएं तो फिर वचन को नम्रता के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए।

4 नम्रता की आत्मा

प्रेरित याकूब कहता है कि वचन को स्वीकार करने के लिये जान बूझकर किया गया परिश्रम आवश्यक है - और यह नम्रता के साथ होना भी चाहिये (याकूब 1:21)।

'नम्रता' शब्द के लिये लेखक द्वारा दिया गया अर्थ एक निर्विकार दशा नहीं है बल्कि यह भावनाओं का सही मिश्रण है। मनुष्य के पास भावनायुक्त व्यक्तित्व है - और यह ईश्वरीय भी है।

यदि वचन किसी व्यक्ति में किसी प्रकार की भावना उत्पन्न नहीं करता है तो इसका तात्पर्य है कि वह कार्य नहीं कर रहा है। वचन को हममें भावनायें - प्यार, दुःख, भय, पश्चाताप - उत्पन्न करना है। वचन को स्वीकार करने पर ये सब उत्पन्न होने चाहिए। और हाँ, वे सब वहीं उत्पन्न होने चाहिए जहाँ उसे उत्पन्न होना है। इसलिये नम्रता की आवश्यकता होती है।

दाऊद और नातान नबी की कहानी को ही लीजिए (2 शमूएल 12 अध्याय)। नातान नबी से कहानी सुनकर क्रोधित हो दाऊद चिल्ला उठता है कि "वह मनुष्य मृत्यु के योग्य" है। किन्तु वहाँ पर क्रोध नहीं -पश्चाताप् उत्पन्न होना था। देखिए, गलत स्थान पर गलत भावना प्रवेश कर रही है। यहाँ पर मनुष्य की भावना (दाऊद का कोप) प्रगट होती है परन्तु वह भावना नहीं जिसकी माँग वचन करता है।

'नम्रता' हमारे भावनाओं के लोक की एक तैयारी है। ईश्वरीय भावनाओं के

लिये भूमि तैयार करने हेतु हमारी मानवीय भावनारूपी जंगली पौधों को उखाड़ फेंकने की अवस्था। दाऊद ने भविष्यद्वक्ता के वचन को नम्रता के साथ ग्रहण नहीं किया। वह उस खेत में वचन के बीच बोता है जहाँ पर मनुष्य की भावनाएँ कटनी के लिये तैयार खड़ी है। और परिणाम....? दाऊद का क्रोध फट पड़ता है। वहाँ पर पश्चाताप् रूपी ईश्वरीय भावना होनी चाहिए थी परन्तु कोप की फसल पकती है। नम्रता स्वीकार करने पर पश्चाताप की फसल पकी। जहाँ पश्चाताप करना चाहिए वहाँ पश्चाताप और जहाँ दुःखित होना चाहिए वहाँ दुःख और स्वयं को अधीन कर देने वाली नम्रता के साथ हमें वचन को स्वीकार करना चाहिए।

जिस प्रकार 'नम्रता' परमेश्वर की भावनाओं के लिये उपजाऊ होने हेतु हमारे भावनाओं के संसार को तैयार करने वाली होती है ठीक उसी प्रकार वह एक विद्यार्थी के समान सीखने हेतु स्वयं को दे देना भी है। कुछ लोगों का विचार होता है कि वे सर्वज्ञानी हैं और अब कोई नई बात उनके सीखने के लिये नहीं बची है। ऐसा कहने में भी उन्हें झिझक नहीं होती है।

एक सड़क दुर्घटना के कुछ ही क्षण पश्चात् वहाँ भीड़ इकट्ठी हो गई। जो व्यक्ति मोटर साइकल चला रहा था उसके सिर पर चोट लगी थी। कुछ लोगों ने उसे उठाकर एक कार में लिटाया और अस्पताल जाने के लिये तैयार हुए। साथ में एक बुजुर्ग व्यक्ति भी कार में चढ़ने लगे। तभी पास खड़े युवक ने उन्हे टोका, "अंकल आप नीचे उतरिये, मैं साथ जाता हूँ। इससे अधिक फायदा होगा।"

"ऐसा क्यों?" उस बुजुर्ग सज्जन ने पूछा।

"मैं एन० सी० सी० टीम का सदस्य रहा हूँ। मैं प्राथमिक उपचार अच्छी रीति से जानता हूँ। आपके जाने से क्या लाभ होगा?"

"बेटा, अभी मेरा जाना ही लाभप्रद होगा। क्योंकि मैं एक न्यूरो सर्जन हूँ।" उन बुजुर्ग सज्जन ने उत्तर दिया।

प्राथमिक उपचार सीख लेने से न्यूरो सर्जन का ढोंग करना ही आज का चलन हो गया है। किसी बाइबल कॉलेज़ में थोड़ा सा अध्ययन कर लेने से कोई भी अपने आपको बाइबल का महान विद्वान समझ लेता है।

एक दिन प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात से उनके शिष्यों ने पूछा, "गुरू जी, जो कुछ आपको मालूम है, वह सब आप ने हमें बता दिया है क्या?"

"मैं तो यही सोचता हूं कि मैं ने सब बता दिया है?" सुकरात ने उत्तर दिया।

"अगर ऐसा है तो अब हम आपके बराबर हो गए हैं।" शिष्यों ने उत्तर दिया।

"लगभग।" सुकरात ने उत्तर दिया। "किन्तु एक बात में अन्तर है।"

शिष्य यह जानने के लिये व्याकुल हो गये कि वह एक बात क्या है। "बहुत सरल सी बात है," सुकरात ने कहा। "मैं अपनी अज्ञानता के विषय में जानता हूँ किन्तु तुम लोग अपनी अज्ञानता के विषय में नहीं जानते हैं।"

अपनी अज्ञानता के विषय में ज्ञान न होने के कारण कई बार हम ज्ञानी होने का अभिनय करते हैं। हमारी प्रार्थना कई बार "परमेश्वर, मुझे सिखा" न होकर, "परमेश्वर, तू तो जानता है कि मुझे सब मालूम है" होती है।

हमें यह भी स्मरण रखना है कि वचन हमारे पास केवल ज्ञान देने के लिये नहीं आता है। कई बार वह हमसे कई नई बातों - नए विचार, नई जीवनचर्या....की मांग करता है....। परमेश्वर जिन भावनाओं की मांग करता है, उन्हें निर्बाध रुप से बढ़ने देने के लिये जिस प्रकार हम अपनी भावनाओं के संसार को तैयार करते हैं, उसी प्रकार जिस जीवनचर्या की मांग वचन करता है, उसे स्वीकार करने के लिए अपने मन को तैयार करना ही नम्रता है। किन्तु जब एक नई बात सिखाने, नए ज्ञान में से होकर हमें रुपान्तरित करने के लिये वचन पास खड़ा होता है, तब भी वचन जो कुछ हमें सिखाता है उसे जानने या वचन जो रुपान्तरण हमें देना चाहता है उसे स्वीकार करने के लिये स्वयं को आधीन करने की दीनता - नम्रता हम दिखाते नहीं हैं। यह विचार कि मैं ज्ञानवान हूँ, हममें से कुछ नया सीखने का मन निकाल कर बाहर कर देता है।

पतरस की ही बात ले लीजिए। प्रभु को उसे एक बहुत बड़ा सबक सिखाना था। इसके लिये एक पृष्ठभूमि के रुप में परमेश्वर ने उसे एक असहाय दशा से होकर गुजारा। (प्रेरितों 10:9-16)

असहाय अवस्था में उसने "आकाश को खुला हुआ और एक बहुत बड़ा चादर चारों ओर से बन्धा हुआ धरती की ओर आते हुए देखा। उसमें पृथ्वी पर पाए जानेवाले हर प्रकार के चौपाए और रेंगनेवाले जन्तु और आकाश के पक्षी भी थे। एक शब्द गूंज उठा कि हे पतरस, उठ कर मार और खा। पतरस ने उत्तर दिया, कभी नहीं प्रभु, मैं ने कभी किसी अशुद्ध वस्तु को नहीं खाय है। उस शब्द ने दूसरी बार उससे कहा, जिसे परमेश्वर ने शुद्ध किया है उसे तू अशुद्ध मत कह। इस प्रकार तीन बार हुआ। तुरन्त ही वह पात्र आकाश पर उठा लिया गया।"

पतरस को भूख लगी। प्रभु ने पतरस की भूख मिटाने के लिये एक विशाल भोज तैयार किया। एक बड़ा पात्र - चारों कोनों पर बन्धा हुआ चादर - जानवरों से भरा हुआ! नूह के जहाज में प्रवेश करनेवाले सभी जन्तु!!

असंख्य जानवर देने के पश्चात् प्रभु ने पतरस से कहा, "पतरस, उठ, तुझे भूखा रहने की आवश्यकता नहीं है, ये सभी जानवर तुम्हारे लिये हैं। उठकर मार और खा।"

पतरस पहले तो प्रसन्न हुआ। उसने जानवरों की ओर देखा। जिन्दगीभर खाएँ तौभी वह समाप्त नहीं होने वाला।

तुरन्त ही उसके अन्दर के धार्मिक संस्कार जाग उठे। वह जानवरों के पैरों की ओर देखने लगा। अधिकत्तर जानवरों के खुर फटे नहीं हैं। जिन जानवरों के खुर फटे हुए नहीं हैं, वे शुद्ध नहीं हैं। उसने कहा, "परमेश्वर यह तू क्या कह रहा है? ये जानवर शुद्ध नहीं हैं, क्या मैं इन्हे खाऊँ? कभी नहीं प्रभु। क्या तू नहीं जानता कि अब तक मैं ने ऐसा कुछ नहीं खाया है?"

शुद्धता और अशुद्धता के विषय में पतरस अच्छी तरह जानता है। आराधनालयों में उस ने यह सीखा है। गुरुओं को उसके विषय में व्याख्यान देते हुए उसने सुना है। इसलिये प्रभु का वचन "उठ कर मार और खा" को नम्रता के साथ ग्रहण करना उसके लिये कठिन था।

पतरस सीखने के लिये तैयार नहीं है। प्रभु के वचनों का पालन करने के बजाय वह प्रभु को सिखाने का प्रयास करता है। "कभी नहीं प्रभु।" उसने कहा। उसे लगता है कि शुद्धता और अशुद्धता के विषय में जितनी जानकारी उसे है उतनी प्रभु को नहीं है?"

प्रभु ने कहा, "हे पतरस, जिसे प्रभु ने शुद्ध ठहराया है, उसे तू अशुद्ध मत कह।"

कई लोगों के साथ ऐसा ही होता है। वे परमेश्वर से भी अधिक शुद्धता दिखाऐंगे। जिसे परमेश्वर ने शुद्ध ठहराया है, उसे भी वे अशुद्ध ठहराते हैं। उसके लिये कोई विशेष कारण नहीं होता है। जो कुछ उन्होने सीख रखा है उसे छोड़ कुछ और सीखने के लिये वे तैयार नहीं होते हैं। भले ही वह सीखना परमेश्वर की इच्छा हो तब भी। उनके पास सीखने की आत्मा (Teachable Spirit) नहीं होती है।

जो सीखने का धीरज नहीं रखता है वह बदलाव के लिये तैयार नहीं होता है। खाने के लिये जो जानवर दिए गए उनके विषय में पतरस की पूर्वधारणा कि वे अशुद्ध हैं, परमेश्वर के वचन को उसके भीतर प्रवेश करने से रोके रखता है। उसे सिखाने के

लिये प्रभु गंभीर प्रयास करता है। प्रभु ने तीन बार उससे कहा, "पतरस, वे अशुद्ध नहीं हैं। मैं ने उन्हें शुद्ध किया है।"

नम्रता न होने में सबसे बड़ी समस्या यह है कि सत्य को जानने पर भी उसे मानना किसी व्यक्ति के लिये असम्भव हो जाता है। प्रभु के तीन बार कहने पर भी कि जानवर शुद्ध किए गए हैं, पतरस एक नए बहाने में अटका हुआ है। वह कहता है, "हो सकता है यह सही हो कि तूने उसे शुद्ध किया है, मैं बहस नहीं करता। चाहे वह शुद्ध हो या अशुद्ध हो, मुझे नहीं चाहिए। क्योंकि मैं ने अब तब ऐसा कुछ खाया नहीं है। जिन जानवरों के खुर चिरे हुए नहीं हैं, उन्हें खाना मेरी आदत नहीं है। इतनी उम्र बीतने पर भी अब तक मैं ने ऐसा कुछ नहीं खाया है। अब आगे खाना भी नहीं चाहता हूँ।" यहाँ हम वचन को नम्रता के साथ ग्रहण करने के बजाय उसे परम्पराओं द्वारा उसमें रुकावट डालते हुए देखते हैं। पीछा करनेवाली व्यवस्था से इन्कार करना उसके लिये मुश्किल है। मैं ने अब तक कोई अशुद्ध या मलिन वस्तु नहीं खाई है। अब तक जो कुछ मैं ने नहीं किया है, वह चाहे सही हो या गलत, अब मैं उसे करना भी नहीं चाहता हूँ।

परमेश्वर चाहता है कि जब वह हमसे किसी ऐसी बात की मांग करे, जो हमारी सीखी हुई बातों, विचारों और रीति विधियों से भिन्न हो तौभी हम उसे नम्रता के साथ, अध्ययन करने के धैर्य के साथ स्वीकार करें। प्रभु तीन बार पतरस से एक नई बात को स्वीकार करने की मांग करता है। किन्तु पतरस ने इतनी नम्रता नहीं दिखाई कि उसे स्वीकार कर ले। वह चादर वापस आकाश पर उठा लिया गया। परमेश्वर के वचन को बिना किसी पूर्व धारणा के नम्रता के साथ स्वीकार करने के लिये हमारे तैयार न होने भर से न जाने कितनी ही स्वर्गीय आशीषें वापस ले ली जाती हैं।

याकूब के पद में वर्णित नम्रता शब्द का एक और अलंकारिक प्रयोग हम पतरस के लेख में देखते हैं, "नये जन्मे हुए बच्चों की नाईं निर्मल आत्मिक दूध की लालसा किया करो, ताकि उसके द्वारा उद्धार पाने के लिये बढ़ते जाओ।" (1 पतरस 2:2)।

अभी जन्म लिये बच्चे को माँ के दूध की ही आवश्यकता है। कुछ लोगों को शंका हो सकती है कि क्या बच्चे के लिये माँ का दूध ही काफी है? धर्मशास्त्र कहता है कि नवजात् शिशु के लिये माँ का दूध ही काफी है। वह सम्पूर्ण भोजन है। इसलिये कितनी भी दरिद्र माँ हो वह भी अपने बच्चे को सम्पूर्ण आहार देकर पाल सकती है। वचन नए विश्वासी का सम्पूर्ण आहार है।

कई बड़े बच्चे दूध को उसी प्रकार पीने की इच्छा नहीं रखते हैं उन्हें दूध में कुछ मिलाना अच्छा लगता है। कुछ बच्चे दूध में शक्कर डालकर पीते हैं तो कुछ बच्चे चॉकलेट डालना पसन्द करते हैं। लेकिन अभी जन्म लिए शिशु को इन सब बातों की इच्छा नहीं है। उसे केवल माँ का शुद्ध दूध की ही इच्छा है। पतरस कहता है कि इसी प्रकार हमें भी वचन रुपी निर्मल दूध की कामना करना है।

याकूब के लेख में जब वचन को नम्रता के साथ ग्रहण करने के लिये कहा गया है तो पतरस वचन की तीव्र अभिलाषा करने के लिये कहता है - एक पद दी जानेवाली वस्तु को स्वीकार करने का आग्रह करता है तो दूसरा उसकी खोज में जाने के लिए प्रेरित करता है। ये दोनों दशाएँ हमारे लिये अनिवार्य हैं। जो वचन हम सुनते हैं उसे सही भावना के साथ स्वीकार करना है। जहाँ हमें आनन्दित करना है वहाँ वचन हमें आनन्दित करता और जहाँ पश्चाताप् उत्पन्न करना है, वहाँ पश्चाताप् भी उत्पन्न करना चाहिए। तभी हम कह सकते हैं कि हम नम्रता के साथ उसे ग्रहण कर रहे हैं। इसी प्रकार उचित अध्ययन की धैर्य के साथ हमें वचन को ग्रहण करना चाहिए। कल तक जो हम ने विचार पाल रखे थे, वचन का अनुसरण करने के लिये उन्हें छोड़ देने और जब वचन एक अन्जान जीवनचर्या की मांग करता है तो उसे स्वीकार करने की नम्रता भी हममें होनी चाहिए। उसी समय जब जब भी वचन प्राप्त हो तब तब उसे न केवल स्वीकार करना है परन्तु एक नवजात शिशु जितनी अधिक माँ के दूध की कामना करता है, उसी प्रकार की इच्छा वचन के लिए भी हम में होनी चाहिए।

9 परम्पराएँ और प्रथाएँ

दो मुख्य शक्तियाँ हमें नम्रता के साथ वचन ग्रहण करने से रोकती हैं। वे परम्पराएँ और प्रथाएँ हैं। एक दूसरे से संबन्धित होने पर भी ये दोनों अलग-अलग हैं। परंपरा वह आत्मबोध है जो एक व्यक्ति में जन्मजात् आता है, प्रथाएँ वे हैं जो हमारे पूर्वजों द्वारा प्रारंभ किए गए।

परंपरा में एक व्यक्ति के जीवन में गलत या सही रीति से हस्तक्षेप करने की शक्ति होती है। परंपरा के विषय में परिपक्व स्मरण और ज्ञान उस व्यक्ति को संस्कारवान और विशाल हृदय वाला बनाता है। कई बार किसी व्यक्ति के अच्छे व्यवहार - अतिथि सत्कार आदि की प्रशँसा करने के लिये हम कहते हैं कि यही उसकी परंपरा है।

किन्तु परंपरा के विषय में गलत विचार किसी व्यक्ति को मूढ़ या अहंकारी बना देता है। पैतृक विचार उसे विशालता की ओर नहीं परन्तु संकुचित दशा की ओर ले जाता है। ऐसे लोगों द्वारा मूर्खता के कार्य होने पर हम कहते हैं, उससे तो हम यही उम्मीद कर सकते हें। यही उसकी परंपरा है।

परंपरा केवल जीन से प्राप्त नहीं होता है। वह बचपन से ही जिन कहानियों को सुनता रहता है और उसके जीवन में समाज का जो स्थान होता है, वह उसके परंपरागत विचारों को बढ़ाता है। इस प्रकार उसे आभास होता है कि उसका समाज अन्य समाजों से अलग है। यही उसकी स्वयं की पहचान को विकसित भी करता है।

प्रत्येक समाज की अपनी विशेषताएँ होंगी। किन्तु समस्या तब प्रारंभ होती है जब यह विचार मन में अपना फन उठाने लगता है कि मेरा समाज अन्य समाजों से श्रेष्ठ है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन विचारों की बेलगाम बढ़ोत्तरी उसे इस सोच तक पहुँचा देता है कि मेरा समाज हर दृष्टि से सम्पूर्ण है।

यह दयनीय बात है कि कई बार परंपरागत विचार मनुष्य को परिपक्वता देने के बजाय नकली पहचान देता है। ऐसे लोगों का विचार होता है कि वे एक संपूर्ण समाज का भाग हैं इसलिये दूसरों को उनसे सीखना चाहिए, उन्हे दूसरों से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है। वे ज्ञान पाने के लिए के लिये अपने मर मिटे पितरों की ओर ही देखते हैं।

यहूदी की समस्या भी यही थी। यहूदी जो स्वयं को सम्पूर्ण व्यवस्था और आत्मिकता का ठेकेदार समझता था, उसके लिये यीशु के वचन सुनने योग्य नहीं थे।

तब यीशु ने उन यहूदियों से जिन्होंने उसकी प्रतीति की थी, कहा, "यदि तुम मेरे वचन में बने रहोगे, तो सचमुच मेरे चेले ठहरोगे। और सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा" (यूहन्ना 8:31,32)।

यह सुन कर यहूदियों को क्रोध आ गया। यह तू क्या कह रहा है? तू ने क्या सोचा, क्या हम गुलाम हैं? हम अब्राहम की सन्तान हैं। आज तक हम किसी के गुलाम नहीं रहे हैं। फिर तेरे यह कहने का क्या अर्थ है कि हम स्वतन्त्र होंगे?

यह इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण है कि परंपरा किस प्रकार किसी व्यक्ति को अन्धा बनाता है। यहूदी कहते हैं कि हम कभी किसी के अधीन नहीं रहे हैं। किन्तु वास्तविकता क्या है? वे मिश्र में गुलाम थे। बाद में वे बाबुल के आधीन हुए। मादियों और फारसियों ने उन्हें गुलाम बनाया। तत् पश्चात् यूनान और सीरिया ने उन्हें गुलाम बनाया और अभी जब वे कहते हैं कि हम कभी किसी के गुलाम नहीं रहे तब भी वे रोम के अधीन हैं। कहने वाले यहूदी और सुनने वाला यीशु दोनों जानते हैं कि वे गुलाम हैं। फिर भी यहूदी निर्लजता से स्वतन्त्र होने का ढ़ोंग करते हैं। शराब के नशे में धुत्त नाली में पड़ा व्यक्ति मानों कह रहा हो, दो बोतल और पीने के बाद भी मैं सीधे ही चलूँगा।

गुलाम होने के बावजूद उन्हे इस बात पर गर्व है कि वे अब्राहम की सन्तान हैं। एक यहूदी के लिये अब्राहम की सन्तान होने से बढ़कर कुछ भी नहीं है। हर एक यहूदी

यह सोचता था कि अब्राहम की सन्तान होने के कारण वे सुरक्षित और स्वतंत्र रहेंगे। वास्तविकता की भयावहता को वे देखने से वंचित रख कर एक पूरी जाति को बंधन में रखने वाली परंपरा की शक्ति कितनी खतरनाक है!! मुक्ति का सन्देश लेकर आनेवाले उद्धारकर्त्ता से यदि गुलाम कहे कि वह गुलाम है ही नहीं स्थिति कैसी होगी? जब वचन स्वतंत्रता का मंत्र लेकर यहूदी के पास पहुँचा तो परंपरा के चक्रव्यूह में फँसा यहूदी कहता है, हमें इस वचन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हम गुलाम नहीं हैं ही नहीं।

अब्राहम की परंपरा का बखान करनेवाले यहूदियों से यीशु पुनः बात करता है। "तुम्हारी बात ठीक हो सकती है। तुम अब्राहम ही की सन्तान हो, परन्तु तुम क्यों मेरे वचनों पर ध्यान नहीं देते? मैं केवल वही बातें कहता हूँ जो मैं ने पिता के पास से सुना है। जो पिता से सुना है, क्या उसे तुम्हें करना नहीं है? (यूहन्ना 8:38)।"

उनकी बातें ध्यान देने योग्य हैं। "तेरी बातें हमें समझ में नहीं आती है। हम केवल इतना ही जानते हैं कि हम अब्राहम की सन्तान हैं" (यूहन्ना 8:39)।

देखिए परंपरा ने कैसी मुसीबत पैदा कर दी है। स्वतंत्रता के वचन वे सुनना नहीं चाहते हैं (वे जब इस सच्चाई को मानते ही नहीं हैं कि वे बंधनस्थ हैं तो स्वतंत्रता के वचन की उन्हें क्या आवश्यकता है)। वे केवल इस सच्चाई को जानते हैं कि वे अब्राहम की सन्तान हैं। परंपरा के अलावा कुछ भी उनके लिये वास्तविक नहीं है।

अन्त में यीशु कहता है, "यदि तुम अब्राहम की सन्तान हो तो इसे प्रमाणित करो। परंपरा बातों से नहीं कार्यों से प्रमाणित होना चाहिए। अब्राहम की सन्तानों को अब्राहम के से काम करने चाहिए।"

अब्राहम ने कौन से काम किए थे? अब्राहम ने परमेश्वर का सन्देश - सन्तान की प्रतिज्ञा - लेकर आनेवाले दूतों का आदर-सत्कार किया (उत्पत्ति 18:1-8)। यीशु कहता है कि उसके वचन मानवीय नहीं है और वह केवल वही बातें कहता है जो उसने पिता के निकट देखा है (यूहन्ना 8:38, 40)। दूसरे शब्दों में कहे तों यीशु भी परमेश्वर का सन्देशवाहक है। फिर भी अब्राहम की सन्तान परमेश्वर का सन्देश लेकर आनेवाले यीशु का (जैसे अब्राहम ने किया) आतिथ्य सत्कार नहीं करते हैं, उसे मारने का प्रयास कर रहे हैं। कारण, परंपराओं द्वारा उन्हे दिये जाने वाले मिथ्या धारणाएँ ही हैं।

यूहन्ना का सुसमाचार आठवाँ अध्याय पढ़ने पर हम पाते हैं कि अधिकांश भाग में वे अब्राहम का नाम लेकर यीशु के वचनों का तिरस्कार करते हैं। 33 से 40 तक के पदों पर ध्यान दीजिए।

अब्राहम के सन्तान होने का भाव उनमें गलत रीति से कार्य करता है। अब्राहम की सन्तान होने के बावजूद वे उसके समान जीने की इच्छा नहीं करते हैं बल्कि परंपरा की अच्छी बातों को छोड़ कर वे उसकी सतही बातों को ग्रहण कर रहे हैं।

आगे हम देखते हैं अब्राहम की सन्तान होने का तीव्र भाव उन्हे एक दूसरे ही स्तर पर ले जाता है -अब वे यह सोचते हैं कि कोई अब्राहम से बड़ा हो ही नहीं सकता है।

वचन - जीवन का वचन - लेकर यीशु पुनः यहूदियों के पास जाता है। यीशु कहता है कि, "मेरे वचनों को माननेवाला कभी मृत्यु को नहीं देखेगा" (यूहन्ना 8:51)। लोगों का कहना था कि यीशु में दुष्टात्मा है। क्योंकि अब्राहम और भविष्यद्धक्ता लोग मर गए तो फिर यीशु के वचनों को माननेवाला अमर कैसे हो सकता है? तू अपने बारे में क्या सोचता है? क्या तू हमारे पिता अब्राहम से बड़ा है? अब्राहम तो मर गया, भविष्यद्धक्ता भी मर गए। फिर तेरी बातें कैसे पूरी होंगी?" उन्होंने पूछा (यूहन्ना 8:52, 53)।

आज भी हमारे जीवन में प्रभु के वचन को जो स्थान मिलना चाहिए उसे परंपराओं ने हथिया रखा है। इस प्रकार कई लोग प्रभु को 'मारना' चाहते हैं। (यूहन्ना 8:37)। हो सकता है हम यहूदियों के समान यीशु को वास्तव में मारना नहीं चाहते हों, फिर भी जब हम अपने में मसीह को बढ़ने की अनुमति नहीं देते हैं तो हम उसे मारने का ही प्रयास करते हैं। जब तक प्रभु के वचन को हममें स्थान नहीं है, तब तक मसीह हममें मरता है।

इस बात पर विचार करें कि आधुनिक युग में परंपरा हमें किस प्रकार वचन से अलग करती है। यहूदियों की गलतियों को हम भी दोहराते हैं। जिस प्रकार यहूदियों के लिये अब्राहम मूरत था उसी प्रकार हमारे लिये भी कलीसिया में कई मूर्तियाँ हो सकतीं हैं। हो सकता है हमारी कलीसियाओं के वे संस्थापकगण जो मर मिटे : अथवा कुछ जीवित अगुवे! मानों उनमें से कईयों के विषय में हम यह सोच बैठे हैं कि वे कभी गलत नहीं हो सकते। इसलिये वचन की सच्चाई प्रगट होने के पश्चात् भी हम उस पर ध्यान देने का प्रयास नहीं करते हैं। "हमारे पिताओं ने ऐसा किया, वैसा किया!" जैसे शब्दों पर लटक कर हम हो हल्ला मचाएंगे। जब यहूदी लोग अब्राहम को पिता कहकर पूजते थे तब भी वे अब्राहम के जीवन का अनुकरण करने के लिये तैयार नहीं होते थे। उसी प्रकार आधुनिक समय में भी 'हमारी कलीसिया', 'हमारे पितर' जैसी बातें कहकर परंपराओं की प्रशंसा करने के अलावा वास्तव में पितरों के विश्वास या उनके जीवन का अनुकरण करने वाले विरले ही होते हैं और यही वास्तविकता है।

आज कई लोगों का परंपराओं पर विश्वास, जॉन की विश्वास घोषणा के समान ही होता है। किसी सज्जन व्यक्ति ने एक बार जॉन से पूछा, "जॉन, आपकी कलीसिया का विश्वास क्या है?"

जॉन को मालूम नहीं था कि अपने विश्वास का वर्णन कैसे किया जाए। इसलिये उसने कहा, "वह तो....। मेरा विश्वास ही मेरी कलीसिया का भी विश्वास है।"

"अच्छा, ऐसी बात है, तो आपका विश्वास क्या है?" उन्होंने पूछा।

"वह तो... मेरी कलीसिया का विश्वास ही मेरा भी विश्वास है।" जॉन ने हिचकिचाते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, तो ऐसी बात है। तो जॉन और जॉन की कलीसिया का विश्वास क्या है?" उस सज्जन ने फिर पूछा।

"वह दोनों एक ही है सर," जॉन ने बुद्धिमानी पूर्वक कहा।

केवल यही नहीं कि जॉन अपने विश्वास को नहीं जानता है, बल्कि वह यह भी नहीं जानता है कि उसकी कलीसिया का विश्वास क्या है। फिर भी वह परंपरागत विश्वास पर घमण्ड करता है।

इसी प्रकार जब जब परमेश्वर हमें एक नया पाठ सिखाने का प्रयास करता है, तब तब परंपरा बाधक बनकर बीच में आ खड़ी होती है। हमें एक बात स्मरण करना है, हमारे पितामहों से गलतियाँ हो सकती है। केवल परमेश्वर और उसके वचन से गलती नहीं हो सकती है।

केवल यहूदी ही नहीं, सामरी भी परंपराओं की गलत अवधारणाओं के द्वारा वचन के लिये बाधक बन रहे थे। यीशु और सामरी स्त्री की बातचीत में यह स्पष्ट है।

यीशु यहूदिया से सामरिया होकर गलील को जा रहा था (यूहन्ना 4)। यीशु का यह कार्य ही यहूदी परंपरा था।

उन दिनों में इस्राएल तीन भाग में विभाजित था। दक्षिण भाग यहूदिया, उत्तरी भाग गलील और बीच का भाग सामरिया। यहूदी अधिकांशत: यहूदिया और गलील में रहते थे। गलील वासियों के लिए यहूदिया जाने का सबसे आसान रास्ता सामरिया से होकर जाता था, किन्तु सामरी लोगों से घृणा करने के कारण यहूदी लोग विशेष करके रब्बी लोग सामरिया होकर याात्रा नहीं किया करते थे। वे सामरिया को छोड़ कर वास्तविक समय से दुगना समय खर्च कर दो बार यर्दन पार कर यहूदिया से

गलील की ओर यात्रा करते थे। किन्तु यीशु नामक रब्बी परंपराओं के अधीन होने के लिये तैयार नहीं था।

यीशु की सामरिया होकर यात्रा में जो कुछ हुआ वह परंपराओं का उलंघन था। पहली बात, यीशु सामरिया होकर यात्रा करता है। दूसरा, यीशु एक सामरी व्यक्ति से पानी मांगता है। उन दिनों में जब यहूदी और सामरी आकिसी प्रकार का व्यवहार नहीं रखते थे। किसी यहूदी का किसी सामरी से पानी मांगना तो सोचने से भी परे था। "यहूदी लोग गाते फिरते थे कि जो व्यक्ति सामरी व्यक्ति से भोजन स्वीकार करेगा वह सुअर का मांस खानेवाले के समान है।" किन्तु यीशु यहूदी परंपराओं का उलंघन करता है।

एक और बात। यीशु यहाँ पर एक स्त्री से पानी मांग रहा है। यहूदी गुरु सार्वजनिक स्थलों पर किसी महिला से बात नहीं करते थे - फिर चाहे वह उसकी पत्नी या बहन ही क्यों न हो। किन्तु यीशु इस परंपरा को तोड़कर एक अन्जान, विजातीय स्त्री से सार्वजनिक स्थल पर बात कर रहा था।

सभी परंपराओं को तोड़कर जब यीशु सूखार शहर में एक स्त्री की खोज में पहुँचता है तो दुःखद बात यह थी कि वह यीशु के वचनों को अपनी परंपराओं द्वारा रोकने का प्रयास करती है।

सूखार शहर से लगभग एक किलोमीटर दूर याकूब का कुआँ था। जब यीशु सामरी स्त्री से पानी मांगता है तो उसे विश्वास नहीं होता। "क्या तू एक यहूदी होकर सामरी स्त्री से पानी मांगता है?" वह अपना सन्देह प्रगट करती है। किन्तु यीशु ने कहा, "परमेश्वर के वरदान के विषय में और उस व्यक्ति को जो तुझसे बात कर रहा है - पानी मांग रहा है, तू नहीं जानती है। यदि जानती होती तो तू उससे जीवन का जल मांगती और वह तुझे देता भी।"

सामरी स्त्री समझ नहीं पाती है कि जीवन का जल क्या है - अथवा वह उसे गलत रूप में समझती है। वह उसे भौतिक रीति से देखती है। वह पूछती है, कि हे स्वामी, तुम्हारे पास पानी भरने के लिये बर्तन नहीं है। कुआँ गहरा है, फिर कैसे तू मुझे जीवन का जल देगा?

उसका सोचना था कि जीवन का जल पात्र में भरकर पिया जाता है! वह उसे आत्मिक दृष्टि से नहीं देख पाती है। ऐसे किसी शब्द को उसने कभी सुना नहीं है। वह इस विषय में अनजान है। अनजान होने पर भी उसे परंपराओं के विषय में अच्छा

ज्ञान है। वह पूछती है कि, "क्या तू हमारे पिता याकूब से भी बड़ा है जिसने हमें यह कुआँ दिया है?"

सामरी लोग अपने आपको याकूब की सन्तान कहा करते थे। उनमें से एक अच्छा प्रतिशत स्वयं को याकूब के बेटे यूसुफ के बेटे एप्रैम और मनश्शे के वंशज मानते थे। धर्मशास्त्र में भी कई स्थलों पर इस्राएल राष्ट्र को एप्रैम सम्बोधित किया गया है। इसलिये सामरी स्त्री का कहना गलत नहीं है। परंपरा की समस्या भी यही है। उनके कहने में कई बार सत्य होता है किन्तु परंपराओं को आवश्यकता से अधिक महत्व देना हमें वचन के प्रति नम्रता दिखाने से रोक देती है।

बहुत संभव है कि यह आज्ञानी स्त्री समाज द्वारा बहिष्कृत भी हो। शायद इसीलिए वह इस भरी धूप में शहर से एक किलामीटर दूर स्थित कुँए पर पानी भरने आई। किन्तु आज्ञानी और तिरस्कृत होने पर भी वह अपनी परंपराओं और प्रथाओं पर 'गर्वान्वित' होती है। किन्तु प्रभु कहता हैं कि परंपराएँ नहीं जिन्दगी बड़ी होती है। तुम्हारा पति कहाँ है, उसे लेकर आओ।

जिन्दगी को छूने पर स्त्री के भीतर कहीं हलचल हुई: हो न हो, यह कोई भविष्यद्वक्ता ही है। कह कहती है, हे भविष्यद्वक्ता, मैं एक पापी हूँ। किन्तु तू ही बता, मैं कहाँ अपना पापबलि चढ़ाऊँ? हमारी परंपरा के अनुसार हमारे पूर्वज इस पहाड़ (गिरिज्जीम पहाड़) पर आराधना करते हैं। तुम लोग कहते हो कि यरूशलेम में आराधना करनी चाहिए। क्या सही है? तू तो भविष्यवक्ता है। हमारे विवाद का हल बता।

सामरी लोग गिरिज्जीम पहाड़ को बहुत महत्व देते थे। जैसी जैसी बातें यहूदी यरूशलेम के विषय कहते थे वे सब बातें सामरी गिरिज्जीम के विषय भी कहते थे। सामरी सिखाते थे कि अब्राहम ने गिरिज्जीम पर्वत पर ही इसहाक का बलिदान किया था। इसी पहाड़ पर ही उसकी भेंट मल्किसिदेक से हुई थी। वे कहते थे कि इस्राएल ने यहोवा को पहला बलिदान भी यहीं चढ़ाया था।

पलिस्तीन में एक कथा प्रचलित थी कि सामरी गिरिज्जीम पहाड़ को कितना अधिक महत्व दिया करते थे। एक दिन रब्बी यूहन्ना गलील से सामरिया होकर यरूशलेम जा रहे थे। किसी सामरी ने उन्हे रोक कर पूछा: "कहाँ जा रहे हैं?"

"यरूशलेम में प्रार्थना करने जा रहा हूँ।" उन्होने जवाब दिया।

"वह किसलिए? सामरी ने पूछा: "क्या इस पहाड़ पर प्रार्थना करना काफी नहीं है? क्या उस श्रापित पहाड़ पर जाना जरूरी है?"

पश्चाताप होने पर भी सामरी स्त्री की परंपराएँ उसे विश्वास करने से रोकती हैं। किन्तु यहाँ हम सामरी स्त्री द्वारा परंपराओं को तज कर मसीह के वचन को स्वीकार करने का दृश्य देखते हैं जबकि यहूदी, परंपराओं पर लटक कर यीशु को मारने का प्रयास कर रहे थे।

परंपराओं के समान वा उससे बढ़कर वचन श्रवण और स्वीकरण से रोकने वाली एक और नुकसान दायक बात है प्रथाएँ। जैसा कि पहले भी बताया गया है कि परंपराओं के समान ही प्रथाओं को भी हमारे पूर्वजों ने ही प्रारंभ किया था।

परंपराओं के समान ही प्रथाओं में भी मनुष्य को गलत अथवा सही रीति से प्रभाविक करने की सामर्थ होती है। कुछ प्रथाएँ जब मनुष्यों को स्वस्थ और धार्मिक भलाई प्रदान करती है तो कुछ प्रथाओं में इसके अलावा कोई बात दृष्टिगोचर नहीं होती कि वे हमारे पूर्वजों द्वारा स्थापित की गईं थी।

प्रथाओं की कुछेक बातें यदि अर्थपूर्ण होंगी तो कई अन्य बातें गैरजरूरी भी होंगी। एक बार एक गुरु द्वारा पूजा के दौरान उनकी बिल्ली अत्यधिक परेशान किया करती थी। इस उपद्रव से बचने के लिए वे पूजा शुरु होने से पहले बिल्ली को एक टोकरी में बन्द दिया करते थे। उसके पश्चात् वे पूजा करते थे। गुरु की मृत्यु हो गई। गुरु के स्थान पर अब शिष्य पूजा करने लगा। वह भी बिल्ली को बन्द कर पूजा किया करते थे। कुछ दिनों के पश्चात् बिल्ली मर गई। अब क्या करें! पूजा बाधित हो गई। पूजा के पहले बिल्ली को बन्द करने का चलन था। अब बिल्ली तो थी नहीं, अन्ततः कहीं से एक बिल्ली का जुगाड़ कर उसे डिब्बे में बन्द करके पूजा पुनः प्रांरभ हुई।

यह निरर्थक तो थी फिर भी किसी को इससे नुकसान भी नहीं था। किन्तु कुछ प्रथाएँ निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी होती हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण सती जैसी प्रथाएँ हैं।

'ये सब तो अन्यजातियों की प्रथाएँ हैं' कहकर मत टालिए। हम मसीही भी कई प्रथाओं का पालन करते हैं।

यहूदियों के मध्य प्रथाओं ने कुछ और ही मुसीबत पैदा की थी। उन्होंने व्यवस्था को प्रथाओं से बदल डाला था। या तो व्यवस्था का पालन करो, और अगर नहीं कर पाते हो तो अमुक - अमुक बातें करो- मानो कह रहे हों कि ट्रेन में बेटिकट यात्रा करने का जुर्माना हजार रुपये है। अगर जुर्माना नहीं दे पाए तो तीन महीने जेल।

व्यवस्था के अनुसार एक व्यक्ति को अपने पिता और माता की देखभाल करनी

थी। यह बेटे का कर्तव्य होता था। माता-पिता की देखभाल न करनेवालों को मृत्यु दण्ड निश्चित किया गया था। किन्तु यहूदी व्यक्ति प्रथाओं की सहायता से इस दण्ड से छूट सकता था। मात्र इतना कह देने से कि जो कुछ तुझे देना था उसे मैंने मन्दिर में दे दिया है उसे माता पिता की देखभाल करने की आवश्यकता नहीं होती थी (मत्ती 15:5) - जैसी बातें फरीसी सिखाया करते थे। माता-पिता को जो धन देना था उसे मन्दिर में चढ़ा देना काफी होता था।

आज के समय में इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। एक धर्म भक्त बेटा अपने पिता से कहता है, "पिताजी आपको देने के लिये मैंने पाँच सौ रुपया रखा था, लेकिन क्या करें उसे मैंने एक कन्वेन्शन सभा करने के लिये दे दिया।" ऐसा कहने से वह अपने पिता के प्रति कर्तव्य से मुक्त हो जाता है। (ऐसे में जब भी दान करने की बात आती है तो धन में से दान करता है जो उसने पिता के लिये रखा है)।

वचन का पालन करना है और परमेश्वर का इच्छा उससे कहीं भी कम नहीं है। इसलिये फरीसी कहा करते थे, कि धर्म के लिये या धर्म की रक्षा के लिये वचन के पालन में कुछ समझौता किया जा सकता है। बृद्ध माता-पिता अनाथ रहें तो कोई बात नहीं परमेश्वर के मन्दिर का भेंट वहाँ पहुँच जाना चाहिए। वचन के पालन करने का एक और विकल्प देते समय वचन की विशेषता समाप्त हो रही होती है-वचन को निर्वल किया जाता है। फरीसी ने जो किया वह एक बहुत घातक बात थी।

"और ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यों की विधियों को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं" (मत्ती 15:9)। परमेश्वर के आज्ञा का अनुसरण करने के बजाय मानवीय आज्ञा रुपी प्रथाओं को ऊँचा किया जाता था। वचन के बदले में प्रथाओं को पालन करना भी काफी हो गया था। धीरे-धीरे वचन से बढ़कर प्रथाओं को महत्व दिया जाना लगा।

फरीसियों को यह सोचना भी असम्भव लगता था कि कोई प्रथाओं का पालन न करे और उन्हें हल्की रीति से ले। और यीशु के शिष्य स्वतन्त्रता का उत्सव मनानेवाले थे-वे शिष्यगण-धर्म संबन्धि औपचारिक शुद्धिकरण के बिना भोजन ग्रहण करते थे (यह दोपहर के पहले के भोजन का हाथ धोना नहीं होता था बहुत समय लेकर प्रार्थनाओं को बोलकर औपचारिक शुद्धिकरण हुआ करता था)। तुरन्त ही फरीसियों ने प्रभु से पूछा, "तेरे शिष्यों ने क्यों औपचारिक शुद्धिकरण नहीं किया है? उन्होंने क्यों प्रथाओं का उलंघन किया?"

यह तो अच्छा मजाक हो गया था। वचन का उलंघन नहीं होना चाहिए था। वचन के विकल्प के रूप में प्रथाओं को प्रारंभ किया गया था। उसके लिये वचन का कोई आधार नहीं था, परन्तु अब प्रथाएँ अति महत्वपूर्ण हो गई है।

प्रभु फरीसी से क्रोधित होता है। "तुम लोग प्रथाओं का पालन करने के लिये वचन का उलंघन करते हो।"

आज कलीसिया में कई बार वचन को नहीं बल्कि प्रथाओं को महत्व दिया जाता है। किसी एक बात के लिये वचन में क्या आधार है ऐसा हम नहीं सोचते हैं-हमारे पितामोह ने इस विषय पर क्या किया था ऐसा सोचते हैं। और अपनी बात के समर्थन में हम उस पद का उल्लेख करते हैं जिसमें कहा गया है कि प्राचीनों ने जो सीमा रेखा खींची थी उसका उलंघन हम न करें। और ऐसा करने का पाप भी हम अपने सिर पर उठा लेते हैं।

पूर्वजों के व्यवहारों में-प्रथाओं में-लटके रहने पर हम वचन की स्वतन्त्रता का निरादर करते हैं। अंग्रेजी भाषा के आरएसवी अनुवाद जब बाहर आया या प्रकाशित हुआ तब उसे स्वीकार करने के लिये अधिकत्तर लोग तैयार नहीं थे। कई लोग सोचते थे कि वह तत्कालीन सुपरिचित किंग जैम्स अनुवाद नहीं है (कुछ लोग तो अब भी ऐसा सोचते हैं)। किन्तु जब किसी व्यक्ति ने इस बात को समझाने का प्रयास किया कि आर एस वी अनुवाद मूल पाण्डु लिपि से उसके बहुत करीब है तो एक किंग जैम्स भक्त ने इस प्रकार से कहा, "यदि प्रेरित पौलुस किंग जैम्स अनुवाद को पसन्द करते थे तो मेरे लिये भी वह काफी है।" इंग्लैण्ड के जैम्स राजा के अनुसार कुछ पण्डितों ने मिलकर षोलह सौ ग्यारह में किंग जैम्स अनुवाद का प्रकाशन किया था और यह पौलुस के पन्द्रह सदी बाद की घटना थी।

परंपराएँ और प्रथाएँ हमारे लिये मार्ग निर्देश मात्र हैं। उसमें हमको चिपके रहने की आवश्यकता नहीं है। परमेश्वर एक एक व्यक्ति से अलग अलग रीति से व्यवहार करता है। वो तरीके गलत नहीं होंगे।

मरकुस 10:46-52 तक के भाग में जिस अन्धे को चंगाई मिली वह और यूहन्ना 9 अध्याय में जिस अन्धे को चंगाई मिली वह दोनों के मिलन का एक दृश्य प्रोफेसर मैथ्यु पी थॉमस ने कल्पना की है। पहले व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति ने पूछा, "तुझे कैसे चंगाई मिली?" तो दूसरे व्यक्ति ने कहा, "प्रभु ने मुझ से कहा कि तेरा विश्वास तुझे

चंगा करता है और मेरी आँखें ठीक हो गई।"

किन्तु दूसरे व्यक्ति ने कहा, "इस प्रकार कोई भी आँखों की रोशनी नहीं पा सकता है। अगर आँखों की रोशनी प्राप्त करना है तो यीशु को जमीन पर थूक कर मिट्टी का किचड़ बनाकर उसे हमारी आँखों पे लगाना, और तब उसे जाकर शिलो के कुण्ड में जाकर धोना पड़ेगा, इसके अलावा आँखों की रोशनी नहीं मिलेगी।"

आजकल कलीसिया के विभाजित होने के लिये इतनी सी बात काफी है। व्यर्थ प्रथाएँ कलीसिया को विभाजित करने का कारण बनती हैं।

हमें परम्पराओं और प्रथाओं को वचन का स्थान लेने की अनुमति नहीं देना चाहिए। वचन केवल स्थिर रहता है। उन प्रथाओं और परम्पराओं से हमें जागृत होना चाहिए जो वचन को रोकती हैं।

10 वचन बनाम स्वतन्त्रता

संतराम ने ग्रामीण बैंक से खेती करने के लिये ऋण लिया था। ग्राम सेवक बिरंची सिंह ने सारे औपचारिकताएँ पूरी करने में उसकी मदद की थी। प्रथम वर्ष में ऋण चुकाने की आवश्यकता नहीं थी परन्तु उसके बाद बारह किश्तों में पैसा वापस करना था। बटाई में खेत लेकर उसे खेती करनी थी। उसकी खुद की जमीन जिस पर घर भी बना हुआ था, उसे जमानत रख कर उसने ऋण लिया था। ऋण वापस करने से चूक जाने पर घर नीलाम हो सकता था।

ऋण लेने की सारी औपचारिकताएँ पूरी करने के लिये ग्राम सेवक को कुछ राशि देना पड़ा था। फिर भी फसल जब बड़ी होने लगी तो संतराम का मन खुशी से झूम उठा। किन्तु उसकी यह खुशी जल्द ही काफूर हो गई। अचानक आई तेज आन्धी और बारिश ने उसकी पूरी फसल को चौपट कर दिया था।

जमीन के मालिक ने हठ किया कि उसे उसका हिस्सा मिलना ही चाहिए। संतराम ने इधर-उधर से उधार लेकर जैसे तैसे उनका हिस्सा चुका दिया। इसके लिये कई लोगों ने इस शर्त पर उधार दिया था कि वह काम करके उनका रुपया चुक्ता कर देगा। इसके बाद भी संतराम चैन की नींद नहीं सो सका। बैंक से लिया गया ऋण वापस करना ही होगा। हे प्रभु, अब क्या होगा...।

बीच-बीच में ग्राम सेवक आ - टपकते। वे यह जानने के लिये आते थे कि

किश्त बराबर चुक्ता हो रहा है कि नहीं।

"मैं कहाँ से वापस करूँगा साहब, मेरे पास एक नया पैसा नहीं है।" संतराम कहता। बात सही भी है। कभी कभी मिलनेवाली मजदूरी एक परिवार के ख़र्च के लिये पर्याप्त नहीं होता था। इसके अलावा खेत के मालिक को देने के लिये जो कर्जा लिया था वह भी धीरे-धीरे चुकाना पड़ रहा था।

बारह महीने बीत गए। संतराम बैंक का ऋण नहीं चुका सका। ऐसी बात नहीं थी कि वह नहीं चुकाना नहीं चाहता था परन्तु वह इतना पैसा इकट्ठा ही नहीं कर पाया।

अन्ततः एक दिन ग्राम सेवक संतराम को बैंक का एक नोटिस थमा गया। बैंक की ओर से सूचना थी कि ऋण लिए हुए दो साल बीत गए हैं और जितनी जल्द हो सके ऋण चुका दिया जाए वरना बैंक आवश्यक कार्यवाही करेगा।

"कानूनी कार्यवाही का मतलब... घर की कुर्की और नीलामी .....और नहीं तो क्या? पुलिसवाले भी आएँगे। घर का सारा सामान निकालकर बाहर कर देंगे। तुमको भी कालर पकड़कर बाहर कर देंगे। घर में ताला लगाकर सील कर देंगे। जितनी जल्दी हो सके। ऋण वापस करना में ही अकलमन्दी है।" ग्राम सेवक ने समझाया।

संतराम को भी लगा कि यही ठीक होगा। किन्तु इतना धन कहाँ है?

"माफ करना साहब, मुझको और मेरे परिवार को सड़क पर मत लाना। आप घर नीलाम होने से बचा लो, साहब।" संतराम ग्राम सेवक से बिनती करने लगा।

"अरे, इसमें मैं कया कर सकता हूँ? तुम्हारे लिये गवाह बनने के कारण मैं भी बिना मतलब फँस गया हूँ।" ग्राम सेवक ने कहा।

संतराम को लगा कि ग्राम सेवक चाहे तो उसे बचा सकता है। वह घर के बगीचे की तरफ गया और बगीचे में लगी कुछ सब्जियाँ तोड़कर ग्राम सेवक के सामने पहुँचा। "हुजूर, इसे स्वीकार कीजिए पर मुझे बचा लीजिए।"

"ठीक है, देखता हूँ।" ग्राम सेवक संतराम द्वारा दिए सब्जी को लेकर वापस चल पड़ा।

बाद में भी बीच-बीच में ग्राम सेवक आ टपकते। घर नीलाम होने की बात कहकर संतराम को डराते। बदले में संतराम जो कुछ देता उसे लेकर चलता बनता।

इस प्रकार कई महीने बीत गए। एक दिन ग्राम सेवक ने आकर कहा कि उसने

बैंक से जो कर्ज लिया था, वह मूलधन और इतने वर्षों का ब्याज मिलाकर एक बहुत बड़ा रकम उस पर उधारी हो गया है।

संतराम को अब ग्राम सेवक की परछाई भी डरावना लगने लगा। ग्राम सेवक का कहना था कि बहुत जल्द ही घर नीलाम करने के लिये बैंक वाले बड़े साहब लोग आएँगे। वह तो ग्रामसेवक अनुनय विनय करने के कारण ही इसमें देरी हो रही है। रह रह कर संतराम की निगाहें सड़क की परली छोर की तरफ उठ जाती कि कहीं घर नीलाम करने वाले आ तो नहीं रहे हैं।

एक दिन उसे स्कूल के सामने चिन्तामग्न खड़े देखकर सुरेश गुरुजी ने उससे पूछा, "क्या हुआ संतराम बड़े परेशान लग रहे हो?"

संतराम ने सारी बात उन्हें बता दी। घर नीलाम होने की बात कहते हुए उसकी आँखे नम हो आई।

सब कुछ सुनने के बाद सुरेश गुरूजी मुस्कुराने लगे। फिर वे हँसने लगे। संतराम को कुछ समझ में नहीं आया।

"अरे संतराम, वह ग्रामसेवक तुमको ठग रहा है। बीते साल तक के किसानों के सभी कर्ज हमारी सरकार ने माफ कर दिया है। समाचार पत्र में भी तो यह खबर आई थी। तुम्हें पता नहीं चला? अरे हाँ, तुम्हे कैसे पता चलेगा? तुम्हारे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है न? अरे मेरे भाई, अब वे सरकार ने तुम्हारा ऋण माफ कर दिया है। अब बैंक वाले वे नीलामी बगैरह के लिये नहीं आनेवाले।"

संतराम का मुँह खुला का खुला रह गया। अपने आपे में आने में उसे कुछ क्षण लगा। उसके बाद वह उछल कर खड़ा हो गया। "अच्छा, ऐसी बात है। अब उस ग्राम सेवक को आने दो। उसे बताता हूँ!"

संतराम को सिर उठाकर घर की ओर जाते देखकर गुरूजी मुस्कुराने लगे।

किस बात ने संतराम को स्वतन्त्र किया? हम कहेंगे कि, उसके ऋण को सरकार ने माफ कर दिया इसलिये वह स्वतन्त्र हो गया। सांकेतिक रुप से यह सही है, किन्तु सरकार द्वारा ऋण माफ करने के बावजूद छः महीने तक संतराम ने इस स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं किया था। स्वतंत्र होने के बावजूद इस सच्चाई को नहीं जानता था। सत्य को जानने पर ही संतराम ने स्वतंत्रता का अनुभव किया।

केवल सत्य को न जानने के कारण बन्धन में होने का अनुभव हमारा भी हो सकता है।

तब यीशु ने उन यहूदियों से जिन्होने उस पर विश्वास किया था, कहा, "यदि तुम मेरे वचन में बने रहोगे तो सचमुच मेरे चेले ठहरोगे। तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुम्हे स्वतन्त्र करेगा।" (यूहन्ना 8:36)

विश्वास करने से ही वे स्वतन्त्र हो चुके थे। पुत्र ने उन्हें स्वतंत्रत कर दिया था। किन्तु वे उस स्वतन्त्रा का अनुभव तभी कर पाते हैं जब वे पुत्रत्व के सत्य को 'जान' लेते हैं।

अपने विश्वास करनेवालों से यीशु के शब्द उनके लिए उपदेश और प्रतिज्ञायें है। उस की और सठीक परिभाषा कुछ इस प्रकार है।

"यदि तुम मेरे वचन में बने रहोगे तो सच में तुम मेरे शिष्य हो। तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा।"

यहाँ शिष्यत्व को एक प्रक्रिया चित्रित की गई है।

विश्वास करते हैं ➡ वचन में स्थिर रहते हैं ➡ शिष्य बनते हैं ➡ सत्य को जानते हैं ➡ स्वतन्त्रता प्राप्त करते हैं।

इस पद का प्रथम भाग उपदेश और द्वितीय भाग प्रतिज्ञा है। अधिक ध्यान दिया जाए तो एक और बात स्पष्ट होती है। विश्वास करनेवालों द्वारा जान बूझकर किया जाने वाला कार्य - किया जा सकने वाला कार्य - वचन में स्थिर रहना मात्र है। सच्चा शिष्य वही है जो वचन में स्थिर रहता है। शिष्य सत्य को जानेगा; क्योंकि वह वचन में स्थिर रहता है। वचन ही सत्य है (यूहन्ना 17:17)। वचन को जानने के द्वारा शिष्य स्वतंत्रता का अनुभव पाता है। सत्य को संपूर्ण रुप से ग्रहण करने से पहले ही - विश्वास करते ही - शिष्य ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर लिया था किन्तु वचन (सत्य) को ग्रहण करने पर ही यह स्वतन्त्रता उसके लिये वास्तविक बनती है।

इस विषय में एक ओशो कथा कही जाती है कि अज्ञानता स्वतंत्र व्यक्ति को भी बन्धन में डाल देती है। एक व्यक्ति तीन ऊंट लेकर एक मन्दिर पहुँचा ऊंट को बांधने के लिये वहां पर दो ही खूंटे थे। अब क्या करें? धर्मशाला के मालिक ने एक उपाया बताया। जो दो खूंटे उपलब्ध हैं उन से दो ऊंटों को बांध दिया जाए और तीसरे ऊंट के पास जाकर ऐसा अभिनया करें मानो उसे तीसरी खूँटी पर बांध रहे हों। उसे इस प्रकार काल्पनिक रुप से बांध दो। वह वहीं बंधा रहेगा।

और कोई चारा न देखकर राहगीर ने ऐसा ही किया। अगले दिन सुबह उठने पर यह देख कर उसे गहरा अरश्चर्य हुआ कि तीनों ऊंट वहीं थे जहाँ उसने रात को उन्हे बांधा था। उसने जाकर पहले वाले ऊंट का बंधन खोला और वह उठकर खड़ा हो गया। दूसरे ऊंट का बंधन खोला और वह भी उठकर खड़ा हो गया। तीसरे ऊंट से उसने उठने के लिये कहा, वह नहीं उठा। उसे मारने पीटने पर भी वह नहीं उठा।

उसने धर्मशाला के मालिक को अपनी परेशानी बताई। "तीसरा ऊंट नहीं उठ रहा है।"

"उसे खोल दो। खोले बिना वह कैसे उठेगा?" धर्मशाला के मालिक ने कहा।

"उसे तो मैंने बांधा ही नहीं है, फिर उसे कैसे खोलूँ?" राहगीर ने पूछा।

"मेरे भाई, कल बिना बांधे ही वह वहाँ लेटा रहा। उसकी दृष्टि में अब भी वह बंधन में है। कल जिस प्रकार आप ने उसे सांकेतिक रुप से बांध दिया था, उसी प्रकार आज उसे सांकेतिक रुप से खोल दीजिये। वह अपने आप उठ जाएगा।" धर्मशाला के मालिक ने कहा।

राहगीर ने वैसा ही किया। ऊंट उठकर खड़ा हो गया।

हमें इस सच्चाई को जानना ही होगा कि हम स्वतन्त्र हैं। वचन हमें यह सच्चाई बताता है। जो वचन में स्थिर रहता है वह स्वतन्त्र है।

अज्ञानता की समस्या छोटी मोटी नहीं है। जब सदूकियों ने यीशु को फँसाने के लिये कुछ प्रश्न लेकर उसके पास आए, तब यीशु ने उनसे कहा, "तुम पवित्रशास्त्र और परमेश्वर की सामर्थ्य को नहीं जानते; इस कारण भूल में पड़े हो (मत्ती 22:29)।" अपने पास एकत्रित यहूदियों से भी यीशु कहता है कि उनकी सबसे बड़ी समस्या उनकी अज्ञानता ही है।

"तुम नहीं **जानते** कि मैं कहाँ से आता हूँ या कहाँ को जाता हूँ।" (यूहन्ना 8:14)

"न तुम मुझे **जानते** हो, न मेरे पिता को...." (यूहन्ना 8:19)।

"वे यह **न समझ सके** कि हम से पिता के विषय में कहता है" (यूहन्ना 8:27)।

कुछ लोग इस बात से ही तसल्ली कर लेते हैं कि कोई बात नहीं, अज्ञानता पाप तो नहीं है। हो सकता है और नहीं भी हो सकता है किन्तु कई बार अज्ञानता की माफी नहीं मिलती है (ignorance is not forgiven)। कभी कभी उसे दण्ड भी मिलता है। यह निश्चित है कि यदि हड़ताल के दिन गाड़ी चलाओगे तो कोई न काई पत्थर जरूर

मारेगा। फिर यह कहने से कोई लाभ नहीं होगा कि मुझे इस हड़ताल के बारे में नहीं मालूम था। हड़ताल के बारे में घोषणा कर दी गई थी। इस विषय में जानकारी रखनी थी। वचन में बने रहना प्रत्येक शिष्य का कर्तव्य है। अज्ञानता का बहाना करना किसी भी रीति से प्रशंसनीय नहीं है। जानना-वचन में बने रहना-हमारी जिम्मेदारी वा कर्तव्य है।

शिष्य किस बात से स्वतन्त्रता प्राप्त करता है?

अपने विश्वास करनेवालों से यीशु ने कहा, "वचन में बने रहोगे तो स्वतन्त्रता प्राप्त करोगे।"

सुनने वालों ने पूछा, "स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे? लेकिन हम तो गुलाम नहीं हैं?"

यहाँ समस्या गुलामी के विषय में उनकी समझ के साथ है। उनकी दृष्टि में गुलामी एक ही स्तर पर हो सकता है, राजनैतिक स्तर पर।

यीशु ने कहा, "तुम गलतफहमी में हो। मेरा विचार यह नहीं था" (आमीन, आमीन के प्रयोग का अर्थ भी यही है। यदि कोई हमारी बात का गलत अर्थ निकालता है तो हम कहते हैं न कि मेरा ऐसा मतलब नहीं था, मैं यह कह रहा था। यह कहने के लिये आमीन, आमीन मैं तुम से कहता हूँ कहने की प्रचलित शैली काम में लाई जाती थी।) तुम्हारी गुलामी की जंजीरे राजनैतिक से परे कहीं अधिक गहरे में है। वह पाप में है। पाप करनेवाले सब पाप के दास होते हैं (यूहन्ना 8:34)।"

पाप करनेवाला पाप का दास; वचन में बने रहने वाला स्वतन्त्र होता है। इसका अर्थ क्या है?

जो वचन में बना रहता है, वह पाप से स्वतन्त्रता प्राप्त करता है। हमने पहले देखा कि वचन और पाप दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं। इस सत्य को यहाँ पर एक बार पुनः दृढ़ किया जाता है। किन्तु यहाँ और भी गहरा विचार है।

सभी लोग इस बात सहमत होंगे कि प्रभु ने हमारे पुराने पापों से छुड़ाया है। हम पाप के दण्ड से छुड़ा लिये गये हैं। किन्तु पाप की शक्ति से?

विश्वासियों में से भी एक अच्छा प्रतिशत पाप के अधीन हैं। क्या करें, हम तो बलहीन हैं,... पाप की शक्ति के अधीन हैं... पाप के शिकार हैं... जैसी सोच हम अपने विषय में रखते हैं। शैतान प्रतिदिन हमसे कहता है कि 'विजयी जीवन असंभव' है। ग्रामसेवक ने जिस प्रकार संतराम को डराया था उसी प्रकार शैतान प्रतिदिन हमें गुलाम कहकर गलतफहमी में रखता है और हमें दासता की ओर ले जाता है।

किन्तु वास्तविकता क्या है? शैतान को अभी हम पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं है। जब पाप हमसे अपने अधीन होने के लिये कहता है तो हमें उसके अधीन होने की आवश्यकता नहीं है। पाप हम पर प्रभुता-अपने साथ खींचकर ले जा-नहीं सकता है (रोमियों 6:14)। पौलुस कहता है कि जब पाप मुझ पर प्रभुता करने का प्रयास करता है तो मुझे उसके अधीन होने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रभु ने मुझे पाप के दण्ड से (पुराने दिनों के पाप से ही नहीं परन्तु पाप की शक्ति से भी (पाप के वर्तमान प्रलोभनों से) छुटकारा दिया है।

कभी कभी विश्वासियों को प्रेरित पौलुस के वचनों का गलत संदर्भ में इस्तेमाल करते हुए सुना हूँ।

"व्यवस्था तो आत्मिक है, किन्तु मैं तो शरीर हूँ और पाप के दास के रुप में बिका हुआ हूँ...मुझे अपने अंगों में दूसरे प्रकार की व्यवस्था दिखाई पड़ती है जो मेरी बुद्धि की व्यवस्था से लड़ती है। को देखती हूँ जो मेरी बुद्धि से लड़ती है। वह मुझे मुझमें निहित पाप की व्यवस्था के आधीन कर देती है। मैं कैसा अभागा मनुष्य हूँ, इस मृत्यु की देह से मुझे कौन छुड़ाएगा?" (रोमियों 7:14-24)।

हमें इस गलतफहमी में नहीं रहना है कि ये शब्द रोमियों के लिए पौलुस के तात्कालिक विचार हैं। यहां पौलुस एक ऐसे व्यक्ति का चित्र खींचता है जो स्वयं की सामर्थ्य से व्यवस्था के नियमों का पालन करने का प्रयास करता है। यदि हम स्वयं की शक्ति से पाप से छुटकारा पाने का प्रयास करते हैं तो हमारी अवस्था भी यही होगी।

किन्तु पौलुस इस वर्णन का अन्त एक बदकिस्मत व्यक्ति के विलाप के साथ नहीं परन्तु एक विजेता की चुनौती के साथ करता है।

"हमारे प्रभु यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर का धन्यवाद हो। इसलिये मैं आप बुद्धि से तो परमेश्वर की व्यवस्था का, परन्तु शरीर से पाप की व्यवस्था का सेवन करता हूँ" (रोमियों 7:25)। क्योंकि पाप से, मृत्यु के आधीन शरीर से मुझे छुड़ाने के लिये यीशु मसीह है।

हमने ऊँचाई से-परमेश्वर से-जन्म प्राप्त किया है, इसलिये हममें पाप पर विजय पाने की शक्ति है। जो परमेश्वर से जनम लिये हैं वे पाप में बने नहीं रहते हैं। परमेश्वर का बीज उसमें बढ़ता है। परमेश्वर से जन्म लेने के कारण वह पाप में बना नहीं रहता है, उसे इसकी आवश्यकता नहीं हैं (1 यूहन्ना 3:9)। जिन्होने परमेश्वर से जन्म लिया है, उसमें पाप से लड़ने की शक्ति भी है।

जब हम वचन में बने रहते हैं तब यह शक्ति हमें प्राप्त होती है। हो सकता है कि शिष्यत्व के पहले दिन ही हमें यह न मिले। कई बार हो सकता है कि शिष्य होने के बाद भी हम पाप में गिर जायें किन्तु प्रभु ने हमें पाप से लड़ने की शक्ति दी है। पहले दिन ही परमेश्वर हमें शक्ति हमें उपलब्ध करा देता है। किन्तु वचन के आधीन बने रहकर बढ़ने में हम इस शक्ति का उपयोग पूर्ण रीति से कर सकते हैं।

वचन प्रति अधीनता और पाप की शक्ति से स्वतन्त्रता, इन दोनों बातों को मिलाकर पौलुस द्वारा कहा गया कथन ध्यान देने योग्य है।

"परन्तु परमेश्वर का धन्यवाद हो कि तुम जो पाप के दास थे अब मन से उस उपदेश-तुम्हे प्राप्त वचन-के माननेवाले हो गए, जिसके साँचे में ढाले गए थे, और पाप से छुड़ाए जाकर धर्म के दास हो गए" (रोमियों 6:17-18)।

एक बार पाप करने के लिये आपने अपने अंगों को सौंप दिया था। किन्तु आज आप जिस वचन के-उपदेश के आधीन हैं आप हार्दिक रुप से उसका अनुसरण करते हैं, इसके लिये आवश्यक सामर्थ्य आपको प्राप्त है।

प्रेरित यूहन्ना का यह कथन भी यहां पर प्रासंगिक है।

"...हे जवानों, मैं ने तुम्हे इसलिए लिखा है कि तुम बलवंत हो, और परमेश्वर का वचन तुममें बना रहता है, और तुमने उस दुष्ट पर जय पाई है।" (1 यूहन्ना 2:14)।

वचन में बने रहनेवाला-वचन में निवास करनेवाला शिष्य, प्रभु द्वारा दी गई स्वतन्त्रता-पाप से स्वतन्त्रता-को जानता और पाप से स्वतन्त्र भी होता है। प्रत्येक बार पाप के प्रलोभन में पड़ने पर भी, बल्कि पाप में गिरने पर भी-वचन हमें सात्वना देने के लिये दौड़ पड़ता है। वह हमें स्मरण दिलाता है कि हमें पाप के अधीन होने की आवश्यकता नहीं है, और पाप का प्रतिरोध करने की शक्ति हममें है। वचन में बने रहनेवाला पाप से स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा।

वचन हमें एक और स्वतन्त्रता देता है, और वह पुत्रत्व की स्वतन्त्रता है। जो पाप के दास थे, अब शैतान के राज्य से परमेश्वर के राज्य में प्रवेश कर रहे हैं। इस नई दशा को परमेश्वर की दासता कह सकते हैं किन्तु वास्तव में हम परमेश्वर की दासता में नहीं परन्तु उसके पुत्रत्व में प्रवेश करते हैं। नई स्वतन्त्रता पुत्रत्व की स्वतन्त्रता है।

कोलकाता भ्रमण के दौरान गोवा निवासी राबर्ट और पुत्र डेविड आपस में बिछड़ गये थे। बच्चे को ढूँढ़ने का रॉबर्ट का सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। रॉबर्ट ने कोलकाता पुलिस में शिकायत दर्ज कराई किन्तु पुलिस भी उसे खोजने में कामयाब न हो पाई। कई वर्ष बीत गये। बेटे के विषय में उसे कोई खबर नहीं मिली। बच्चे की याद उसे बार-बार कोलकाता खींच लाती और हर बार वह पुलिस अधिकारियों से मुलाकात करता। अनाथ बच्चों के बारे में पुलिस के पास जितनी भी सूचनाएँ होती उन्हे वह बारीकी से खंगालता। धीरे धीरे कई पुलिस अधिकारी रॉबर्ट के अच्छे मित्र बन गए। कई वर्षों पश्चात् एक बच्चा चोरी के आरोप में पुलिस द्वारा पकड़ा गया। पुछताछ के दौरान पुलिस को लगा कि यह बच्चा कोलकाता का नहीं है। उन्होंने अपने अधिकारी को सूचना दी। वह अधिकारी रॉबर्ट की जान पहचान का था। उन्हें लगा कि हो सकता है यह बच्चा वर्षों पूर्व खोया हुआ डेविड हो। रॉबर्ट भागा-भागा आया। वह बच्चा बहुत मैला कुचैला था, किन्तु कई निशानों और चिन्हों से रॉबर्ट ने अपने बच्चे को पहचान लिया। अगले दिन ही रॉबर्ट अपने बच्चे डेविड को लेकर अपने घर गोवा पहुंच गया।

विशाल कमरों वाला महल नुमा घर...घर के सामने सुंदर बगीचा...रंग बिरंगे फूल....गली में पले बढ़े डेविड के लिये सब कुछ बड़ा अजीब सा था। भोजन कक्ष में मेज पर भोजन रखकर डेविड को बुलाया गया। डेविड आकर अजनबी निगाहों से सबको देखने लगा। जब उससे बैठने के लिए कहा गया तब "नहीं सर" कहकर अपना सिर झुका लिया और एक तरफ खड़ा हो गया।

"सर नहीं, मैं तुम्हारा पिता हूँ, बेटा!" रॉबर्ट ने कहा। अधिक दबाव डालने पर वह अपनी थाली लेकर नीचे जाकर बैठ गया-नीचे बैठकर खाना ही वह जानता था। बमुश्किल रॉबर्ट ने उसे कुर्सी पर बिठाकर भोजन कराया।

रात को उसके सोने के लिये जो बिस्तर तैयार किया गया था उसे देखकर वह चकित रह गया। उस पर लेटने पर उसे नींद नहीं आई। किन्तु रात में काफी देर तक उसके पिता उसके पास बैठकर उसके बचपन की शरारतों के बारे में उससे बातचीत करते रहे। उसे सब कुछ तो समझ में नहीं आया, परन्तु वह धीरे-धीरे रॉबर्ट को पिता के स्थान पर स्वीकार करने लगा।

डेविड शनैः शनैः रॉबर्ट को पापा कह कर पुकारने लगा। उस घर में वह स्वतन्त्रता के साथ सबसे मिलने लगा। स्वयं को वह उस घर का सदस्य और उत्तराधिकारी के रुप में देखने लगा।

डेविड के हाव भाव में परिवर्तन आने लगा। वह पूरी रीति से रॉबर्ट की सन्तान बन गया। बीच-बीच में वह जाकर आइने में देखता। रॉबर्ट के चेहरे के साथ अपना चेहरा मिलता हुआ देखकर उसे संतृप्ति होती।

डेविड, समय बीतने पर रॉबर्ट की सन्तान की रुप में रुपान्तरित नहीं हुआ। बल्कि वह हमेशा से रॉबर्ट का बेटा था। पिता के साथ काफी दिन तक रहने के पश्चात् उसे इस बात का एहसास हुआ कि वह उनका पुत्र है और क्रमशः उसे पुत्रत्व की स्वतन्त्रता मिली। वह स्वतन्त्रता उसे अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्र ने नहीं दिया बल्कि उसके पिता की बातों ने दिया था। पिता की बातचीत में उसने पुत्रत्व का अनुभव से जान लिया।

आत्मा आप ही हमारी आत्मा के साथ गवाही देता है कि हम परमेश्वर की संतान हैं। (रोमियों 8:16)।

परमेश्वर का आत्मा हमारी आत्मा से जो गवाही-वचन- देता है वही हमारे पुत्रत्व के विषय हमारा आधार है। वचन ही हमें पुत्रत्व की स्वतन्त्रता का अनुभव कराता है। बाद में हम उस वचन के लिये अपने कानों को लगाते भी हैं। "जो परमेश्वर से होता है, वह परमेश्वर की बातें सुनता है।" (यूहन्ना 8:47)। डेविड से रॉबर्ट ने जब पहली बार बात किया तब वह डर गया था। पिता होने पर भी वह रॉबर्ट को 'सर' कहकर पुकारता था, किन्तु उनके वचनों ने उसे पुत्रत्व की स्वतन्त्रता प्रदान की। पिता के वचनों को सुनना और उसे मानने का अवसर मिलना वह अपना सौभाग्य समझता है।

अगली बात है कि वचन भविष्य की व्याकुलताओं से हमें मुक्ति देता है।

मानवीय रुप से हमारे भीतर बहुत भय होता है, किन्तु वचन की प्रतिज्ञायें हमें अहसास दिलाती है कि हम प्रभु के हाथों में हैं। यीशु कहता है कि "यदि कोई व्यक्ति मेरे वचन पर चलेगा तो वह अनंत काल तक मृत्यु को नहीं देखेगा।" (यूहन्ना 8:51)।

मृत्यु के समान भयावह कुछ भी नहीं है-विशेषकर यदि मृत्यु के बाद का जीवन अनिश्चित है तो! किन्तु प्रभु का वचन हमें मृत्यु के बाद के जीवन के विषय में एक आनन्दमय आशा प्रदान करता है।

मसीही जीवन मृत्योपरान्त प्रारंभ होने वाला एक जीवन नहीं है। वह यहीं इस पृथ्वी पर प्रांरभ होने वाला जीवन है। किन्तु वह इस पृथ्वी तक सीमित नहीं होता है। वह मृत्यु के बाद भी जारी रहता है। इसलिये मसीह ने हमें जिस जीवन की प्रतिज्ञा दी है, उसे हम मृत्यु के बाद का जीवन कहते हैं। वह इस संसार में प्रारंभ होने वाला

और अगले संसार में जारी रहनेवाला है। उस वचन की मधुरता और शक्ति जानने के कारण ही पतरस यीशु से कहता है, "हे प्रभु, हम किस के पास जाएँ? अनन्त जीवन की बातें तो तेरे ही पास हैं" (यूहन्ना 6:68)।

वचन हमें जो स्वतन्त्रता देता है उसके विभिन्न स्तरों पर विचार कीजिये!! वह हमें पाप के दण्ड से स्वतन्त्र करता है; पाप की शक्ति से, प्रलोभनों की दासता से भी स्वतन्त्रता देता है। शैतान की गुलामी से छुड़ाकर परमेश्वर हमें पुत्रत्व की स्वतन्त्रता की ओर ले जाता है। उसके भवन में उसके साथ जब हम निवास करते हैं, तो हम भविष्य की व्याकुलताओं से स्वतन्त्रता प्राप्त करते हैं।

11 सरल सुन्दर

सुनील एक जाना पहचाना चित्रकार है। प्रसिद्ध होने पर विश्लेषक उसके चित्रों का अर्थ निकालने लगे। बाद में यह हाल था कि सुनील ने क्या चित्र बनाया है, यह समझने के लिये विश्लेषक से पूछना अनिवार्य हो गया। विश्लेषकों ने सुनील के चित्रों को 'अद्‌भुत' करार दिया। उसके चित्रों की प्रदर्शनी में भारी भीड़ जुटने लगी। उसके चित्रों के ऊँचे दाम मिलने लगे। सुनील के चित्र धनाढ्य लोगों के स्वागत-कक्ष की शोभा बनने लगे।

एक बार सुनील के चित्रों की प्रदर्शनी चल रही थी। एक चित्र विशेष के बारे में विश्लेषकों ने समाचार पत्रों में इस प्रकार लिखा।

"यह चित्र अद्‌भुत है। चित्र में हम एक भरा हुआ पात्र देखते हैं, उसमें से उमड़ता हुआ तेल ....। और फिर आकाश की ओर बढ़ते दो सींग.....उसके बगल में दो छोटे सींग भी!! पात्र जन्म की सफलता है। इन्र उसे रोकने वाली माया का बेताल है। वे सींग क्या हैं? वह माया को बीच में से चीरते हुए बाहर की ओर झांकती उम्मीद के सिवा कुछ नहीं है। वे छोटे सींग....वे तो जारी रहने वाली आशा का प्रतीक है....।"

सब कुछ पढ़ने के बाद सुनील ही संदेह में पड़ गया। क्या विश्लेषक मेरे ही चित्र के बारे में यह सब कह रहा है? वह चित्र कौन सा है? सुनील उस विशाल कक्ष में पहुँच गया, जहाँ उसके चित्रों की प्रदर्शनी चल रही थी.....विश्लेषक द्वारा वर्णित चित्र

को देखने के लिये! वह अपनी हँसी नहीं रोक पाया। किसी ने उस चित्र को उलटा टांग दिया था। वास्तव में वह चित्र बहुत सरल था-एक मेज पर एक युवती उदास बैठी है। चित्र को उलटा रखने पर युवती का सिर भरा हुआ पात्र बन गया। मेज पर रखा पात्र माया का बेताल बन गया। मेज की टांगे माया की उदासी को चीर कर आकाश की ओर जानेवाली आशा का सूचक बन गई।

गलती किससे हुई? प्रदर्शनी स्थल पर चित्रों को टांगने वाले ने चित्र को उलटा टांग दिया था। यह पहली गलती थी। लेकिन सबसे बड़ी गलती यह नहीं थी। उलटे चित्र की व्याख्या करनेवाले विश्लेषक की बुद्धि अपार थी। यदि विश्लेषकों ने व्याख्या करके इस चित्र के अर्थ का अनर्थ न किया होता तो एक अनपढ़ व्यक्ति भी कुछ देर देखने के पश्चात् यह समझ जाता कि चित्र उलटा टंगा है। किन्तु विश्लेषक की व्याख्या ने आम जनता को सुनील के चित्र की वास्तविकता में प्रवेश करने से रोक रखा था।

वास्तव में बाइबल के विषय में भी यही बात हुई है। विश्लेषक - व्याख्या करनेवाले - ने वचन को जनसाधारण से अलग कर दिया। उसने उसे वह अर्थ दिया जो एक आम आदमी सपने में भी नहीं सोच सकता है। उपरोक्त घटना में, सुनील ने भी अपने स्वयं के चित्र के तथाकथित अर्थ को तब समझा जब विश्लेषक ने बताया। ऐसे प्रचारकों से हम अनजान नहीं है जो वेदी पर खड़े होकर वचन के ऐसे अर्थ का बखान करते हैं जिसे परमेश्वर ने भी कभी सोचा नहीं होगा। कई बार बाइबल को उलटा पकड़ कर पढ़ने के बाद उसे गूढ़ अर्थ प्रदान करते हैं। ऐसे व्याख्यान अनेक लोगों को ज्ञानी बना देते हैं! पर बेचारा साधारण व्यक्ति मारा जाता है!

अन्यथा जरा सोचिए। इब्रानी बाइबल के प्रत्येक सातवें शब्द को अंक देकर उनका योग कर अर्थ देने वाला बाइबल विद्वान किसके लिये वचन की व्याख्या करता है? ऐसा कर हम किस का भला करने का प्रयास कर रहें हैं। क्या यह अक्सर चित्र को उलटा पकड़ उसकी व्याख्या करने के समान नहीं होता है?

परमेश्वर ने अपने वचन को बहुत सरल रूप में मनुष्यों को दिया है। अक्सर हम उसे उसी रुप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। विश्लेषक उसे गूढ़ बनाकर मुस्कुराता है। विश्लेषक का तर्क था कि यदि सुनील ने चित्र बनाया है तो उसमें गूढ़ अर्थ छुपा हुआ है। मंच पर से प्रचार करने वाले ज्ञानी प्रचारकों का मत होता कि वचन को सरल नहीं किया जा सकता है। इसलिये बाइबल भाग कितना भी छोटा क्यों न हो, वे उसमें अंकों और चित्रों का हवाला देकर उसमें ख्रीस्त विरोधी, भेड़ों के झुण्ड

और कम्प्यूटर प्रचालक आदि को देखते हैं। इसलिये साधारण विश्वासी किसी साधारण भाग की व्याख्या करने से भी भयभीत रहता है। वह विश्वास नहीं कर पाता है कि बाइबल को इतना सरल भी किया जा सकता है कि उसे समझा जा सके। कहीं कोई गूढ़ अर्थ वचन में छुपा हुआ न हो!

हिमाचलवासी प्रोफसर सुन्दर सिंह से (उनके दोस्त उन्हे सुकरात कहकर पुकारते थे-ज्ञानी) उनके मित्र ने पूछा "सुन्दर क्या आपने गीता पढ़ा है?"

"हाँ, अवश्य," सुन्दर सिंह ने उत्तर दिया।

"तो फिर आपको गीता समझ में भी आ गई होगी?"

"हाँ," सुन्दर ने कहा।

"यार, क्या आपको गीता पूरी तरह समझ में आ गई?" मित्र ने पुनः उनसे पूछा।

"ऐसा नहीं लगता कि पूरा समझ में आ गया।" सुन्दर ने नम्रता पूर्वक कहा।

"आएगा भी नहीं।" मित्र को सन्तोष हुआ।

न समझ में आना को वह गीता की विशेषता के रुप में देखते हैं। उसे समझने के लिये विद्वान ऋषि, मुनि ही चाहिए।

न समझ में आना यदि गीता की विशेषता है तो समझ में आना बाइबल की विशेषता है। बाइबल लिखा ही इसलिये गया है कि लोग - वह भी साधारण लोग - उसे समझें।

ऐसा नहीं है कि साधारण व्यक्ति के न समझने लायक कुछ भी बाइबल में नहीं है। फिर भी ऊपरी तौर पर देखें तो बाइबल लिखा ही इस प्रकार गया है कि साधारण लोग उसे समझ सकें। इस प्रकार नहीं कि साधारण लोग उससे दूर भागें।

हम जानते हैं, कि बाइबल के लेखकों में अधिकांशतः साधारण लोग थे। शमूएल जो ग्रामीण भविष्यद्वक्ता था, दाऊद जो चरवाहा था, अंजीर की खेती करनेवाला आमोस, पुरोहिताई पृष्ठभूमि वाला यिर्मयाह, यहेजकेल जो अप्रवासी था, महसूल लेनेवाला मत्ती, वैद्य लूका, पतरस जो मछुवारा था, पौलुस जिसने जिद किया कि वह शब्दों का खेल नहीं खेलेगा।

परमेश्वर ने क्यों बहुत ही साधारण लोगों को अपने महान पुस्तक के लेखन के लिये चुना?

कुछ लोग कह सकते हैं कि निर्बल पात्रों में अपनी सामर्थ्य प्रगट कर महिमा लेने के लिये उसने ऐसा किया। किन्तु इससे भी तार्किक एक और विचार है। परमेश्वर जानता था कि उसके सन्देश के पाठक साधारण लोग होंगे। जब वे उसे पढ़ेंगे तो शब्दों और शैली से भी लोगों को वचन अनजान नहीं लगना चाहिए। मान लीजिए परमेश्वर महान कवि होमर या दार्शनिक सुकरात जैसे लोगों को अपना वचन लिखने के लिये चुनता.....हम जैसे साधारण लोग निश्चय ही बाइबल पढ़कर दुविधा में पड़ जाते। प्लेटो या अरस्तुस के लेखों वाले किसी पुस्तक को पढ़कर देखिए। पहला पन्ना समाप्त करने में ही हमारा पसीना निकल जाएगा। यदि परमेश्वर उनके द्वारा अपना सन्देश दिया होता तो वह अधिकांश लोगों से दूर ही रहता। किन्तु परमेश्वर संसार के लिये अपने सन्देश को साधारण लेखकों के बुद्धि क्षेत्र में डालकर उसे साधारण लोगों की पहुंच के भीतर ले आया।

ऐसे लोग भी हैं जो सोचते हैं कि बाइबल को लोगों की पहुंच के बाहर रखना विद्वता है। किन्तु वे वचन के साथ न्याय न करने वाले होते हैं क्योंकि परमेश्वर सदा वचन को सरल करना चाहता है। परमेश्वर का मन (लोगोस) जो आदि से ही वचन था उसे मनुष्यों की पहुंच के भीतर लाने के लिये ही वचन ने शरीर धारण कर हमारे बीच रहा। (यूहन्ना 1:14) और हमारे बीच रहा। उसे किसी भी रीति से गूढ़ नहीं बनाना चाहिए।

एक बार सेमिनरी (बाईबल संबंधी) शिक्षा प्राप्त एक विद्वान युवक एक ग्रामीण कलीसिया में पादरी नियुक्त हुआ। अपने प्रवचनों में वह सिर के ऊपर से जानेवाले उपदेशों और मुँह में न समाने वाले कठिन धर्मवैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग करता। अन्ततः हारकर गाँव के मुखिया ने एक दिन उससे कहा, "पास्टर, आप जो कुछ कह रहे हैं वे सचमुच ज्ञान की बातें हैं, लेकिन यह सब हमारे सिर के ऊपर से निकल जाती हैं।"

"सिर के ऊपर से निकल जाती हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ? आपको अपना सिर थोड़ा ऊँचा करना होगा, तभी वह सिर में घुसेगा।" पास्टर ने तर्क दिया।

"पास्टर, आपने बिल्कुल सही कहा। हम ऐसा करने का प्रयास करेंगे। यदि समझ में आ जाए तो हमारा ही तो भला होगा! किन्तु आपको एक बात स्मरण करना चाहिए। परमेश्वर ने पतरस जैसे महान चेले को भी मेम्नों को चराने के लिये नियुक्त किया था। जिराफों को नहीं।"

वचन के व्याख्यातागण-प्रवचनकर्ता और प्रचार करनेवाले और लेखक-यदि इस बात पर ध्यान दें तो बहुत अच्छा होगा। वचन को साधारण की लोगों की पहुंच के भीतर लाना ही आज की आवश्यकता है।

प्राचीनों से भी एक बात कहे बिना मैं नहीं रह सकता। क्या वचन ग्रहण करने के लिये हरेक बार व्याख्याताओं की खोज में जाने की आवश्यकता है? सुनील के अधिकांश चित्र साधारण लोगों की समझ में आनेवाले थे। विश्लेषक की कुशाग्र बुद्धि के कारण ही वह साधारण लोगों की पहुंच के बाहर रह गया। यह सोचना अधिक सही होगा कि अपनी प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिये यह उनकी एक चाल थी।

कभी कभी वचन के व्याख्या की आवश्यकता होती है।

"जब फिलिप्पुस दोड़कर वहाँ पहुंचा तो खोजा को यशायाह की पुस्तक को पढ़ते हुए सुना। उसने (फिलिप्पुस ने) पूछा कि जो तू पढ़ता है क्या उसे समझता भी है? तो खोजा ने उत्तर दिया, कि जब तक कोई मुझे न समझाए तब तक मैं कैसे समझूँ?" (प्रेरितों 8:30,31)

यहाँ पर यह स्मरण करना आवश्यक है कि खोजा एक गैर यहूदी पृष्ठभूमि का व्यक्ति है और जो भाग वह पढ़ रहा था, वह यहूदियों को मसीह के आगमन की सूचना देने वाला विशेष भाग था। वरना यह आवश्यक नहीं था कि खोजा को किसी व्याख्याता की आवश्यकता पड़े।

निश्चय ही व्याख्या का अपना महत्व है, किन्तु बाइबल के अधिकांश भाग बिना किसी व्याख्याता की सहायता के समझा जा सकता है। बस इतना कि इसके लिये जान बूझकर किया गया प्रशिक्षण और परिश्रम आवश्यक है।

हमेशा व्याख्या करने वाले की सहायता लेना खतरनाक भी हो सकता है। वचन की सरलता को समझकर उसे स्वयं ग्रहण करने का प्रयास करना आवश्यक है। 'वचन' को हमें अपना बनाना है। स्वयं अध्ययन कर उसे समझना है। एक कहावत है, कि "यदि आप मुझे आज भोजन खिला देंगे, तो मैं आज जी सकता हूँ। किन्तु यदि आप मुझे एक नौकरी दिला देंगे तो मैं जीवन भर खा सकता हूँ।" यदि हम रोटी कमाना नहीं जानते हैं तो हमें रोज किसी पर आश्रित होना होगा। यदि हम रोटी कमाना जानते हैं तो जिस पर हम आश्रित होते हैं, उसका एकाधिकार समाप्त हो जाता है। रोटी देने वाले की रोटी का विश्लेषण करने की हमारी क्षमता (जिम्मेवारी) भी बढ़ती जाती है।

वचन का हमारा अपना बनना धर्म के ठेकेदारों को पसंद नहीं आता है। किन्तु यह अनिवार्य है। पुराने समय में जब कैथलिक कलीसियाएँ साधारण लोगों को वचन से दूर रखती थीं, तब एक बार एक पुरोहित ने किसी मसीही विश्वासी को बाइबल पढ़ते हुए देखा। "आपको धर्मशास्त्र नहीं पढ़ना चाहिए। उसे पढ़कर व्याख्या करने के लिये हम लोग यहाँ हैं।" पादरी ने कहा।

"पादरी साहब, मैं डेली नीड्स की दुकान से दूध खरीदता हूँ। किन्तु हर समय मिलावट

वाला दूध मिलता है। इसलिये मैंने बड़ी मुश्किल होने के बाद भी एक गाय ख़रीद लिया। जबकि मैं गाय दुहना भी अच्छी तरह नहीं जानता था।" उस विश्वासी ने कहा।

आगे की कहानी यह है कि पास्टर चुपचाप वहाँ से खिसक लिए।

वचन को अपना बनाने की प्रक्रिया में सबसे पहले हमें यह जानना है कि वचन हमारे लिये ही दिया गया है। जब उसे पढ़ना प्रारंभ करते हैं तो हम जानने लगते हैं कि वह कितना सरल है। क्रमशः उसमें हमारी रुचि बढ़ती है (धर्मशास्त्र की सरलता में उतरने के लिये सीढ़ी के रूप में उपयोग में आने के लिये ही इस पुस्तक में सरल भाषा का प्रयोग किया गया है)।

यहोवा की व्यवस्था ख़री है,

वह प्राण को बहाल कर देती है;

यहोवा के नियम विश्वासयोग्य हैं,

साधारण लोगों को बुद्धिमान बना देते हैं;

यहोवा के उपदेश सिद्ध हैं,

हृदय को आनन्दित कर देते हैं;

यहोवा की आज्ञा निर्मल है,

वह आँखों में ज्योति ले आती है;

यहोवा का भय पवित्र है,

वह अनन्तकाल तक स्थिर रहता है;

यहोवा के नियम सत्य और पूरी रीति से धर्ममय हैं।

वे तो सोने से भी और बहुत कुन्दन से भी बढ़कर मनोहर हैं;

वे मधु से और टपकने वाले छत्ते से भी बढ़कर मधुर हैं।

और उन्हीं से तेरा दास चिताया जाता है;

उनके पालन करने से बड़ा ही प्रतिफल मिलता है। (भजन 19:7,8,9,10,11)

वचन भजनकार का अपना है। यह नाचीज भी उससे पोषण प्राप्त करता है।

12 वचन की व्याख्या और पवित्रात्मा

हमने देखा कि बाइबल का अधिकांश भाग सरल और साधारण लोगों के लिये पठनीय है। कई बार उसे समझने के लिये जो अतिरिक्त सहायता हमें चाहिए वह बाईबल की पृष्ठभूमि - पुस्तक का लेखक किस समय का प्रतितिधि है? किस संदर्भ में प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई हैं - का ज्ञान भर होता है! हो सकता है कि हमें उपयोग में लाए गए शब्दों के तत्कालीन अर्थ की ओर यात्रा भी करना पड़े। ये सारी बातें एक सामान्य बुद्धिवाला व्यक्ति पूछकर और पढ़ कर समझ सकता है। इन वचनों में छुपे हुए आत्मिक सत्य कहकर कई अतार्किक बड़ी बड़ी बातें बोलना सही व्याख्या करने का तरीका नहीं है।

उपरोक्त बातों से यह नहीं समझना चाहिए कि वचन की व्याख्या करने की आवश्यकता ही नहीं है। वचन की व्याख्या निश्चय ही आवश्यक है। वचन की व्याख्या में के गलत और सही बताने के लिये एक और किताब लिखने की आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु इस अध्याय में यह बताया जा रहा है कि वचन की व्याख्या किस प्रकार हमारे आत्मिक जीवन का प्रभावित करती है।

वचन का वास्तविक व्याख्याता पवित्र आत्मा ही है। कोई भी व्याख्या तब तक सही नहीं हो सकता जब तक आत्मा गवाही न दे। "मुझे तुमसे और भी बहुत सी बातें कहनी हैं, परन्तु अभी तुम उन्हें सह नहीं सकते। परन्तु जब वह अर्थात् सत्य का

आत्मा आएगा, तो तुम्हें सब सत्य का मार्ग बताएगा, क्योंकि वह अपनी ओर से न कहेगा परन्तु जो कुछ सुनेगा वहीं कहेगा, और आनेवाली बातें तुम्हें बताएगा" (यूहन्ना 16:12,13)।

किसी व्यक्ति के समझ में न आनेवाली बातों को समझाना व्याख्या कहलाता है। इस अर्थ में यहाँ पर यीशु के वचन का व्याख्याता स्वयं पवित्र आत्मा है। प्रत्यक्षत: चाहे कोई भी व्यक्ति वचन की व्याख्या करे किन्तु यदि पवित्र आत्मा हमारे हृदय में इस बात की गवाही न दे तो उस व्याख्या का फल शून्य होगा।

यीशु यहाँ पर पवित्रात्मा के कार्य के रूप में दो मुख्य बातों का वर्णन करता है। पहला, वह कायल करता है। (यूहन्ना 16:8)। पवित्र आत्मा, पाप, न्याय और धार्मिकता इन तीनों क्षेत्रों में कायल करता है। वचन की सही व्याख्या में कायल होने की एक दशा आती है। किन्तु वह व्याख्याता के किसी कार्य का परिणाम नहीं होता है। प्रत्यक्ष भले ही व्याख्या करने वाले हम हों परन्तु हमारी व्याख्या पर पवित्र आत्मा जो गवाही देता है, उसके कारण कायल होने की दशा आती है। आश्चर्यजनक विद्धता से यदि कोई व्यक्ति व्याख्या कर भी ले किन्तु पवित्र आत्मा हृदय में जो गवाही देता है, उसके द्वारा यदि सुनने वाले कायल होने की दशा में नहीं पहुँच पाते - सुननेवाले यदि पाप, न्याय और न्याय के विषय में कायल नहीं किये जाते - तो ऐसी व्याख्या से सतर्क रहने की आवश्यकता है।

यहाँ पर 'कायल' शब्द का अर्थ व्यवहारिक अर्थ से थोड़ा भिन्न है। साधारण भाषा में हम कायल उसे कहते हैं जब कोई व्यक्ति अपने तर्क द्वारा किसी को अपने विचारों को मानने के लिये वाध्य कर देता है। किन्तु आत्मा द्वारा कायल किया जाना इससे भिन्न होता है।

सरकारी नौकरी से छुट्टी लेकर पाँच वर्ष विदेश में नौकरी करने के बाद लौटने पर मुकेश के पास बीस लाख रूपये जमा पूंजी के रूप में थे। उसने गंभीरता के साथ सोचा कि उस धन का क्या किया जाए। उसके सामने तीन संभावनाएँ थीं।

1. शेयर बाजार में पूरे चार लाख लगाकर उसे जल्दी से बढ़ा दिया जाए।
2. बीस लाख के साथ कुछ और धन कर्ज लेकर कुछ जमीन या घर खरीदा जाए और रियल एस्टेट के धन्धे में लगकर और धन कमाया जाए।
3. बीस लाख रूपये बैंक में जमा कर दिया जाए। तीन साल बाद भविष्य निधि से कुछ और धन लेकर एक छोटा सा घर बनाया जाए।

मुकेश ने हर एक संभावना पर विचार किया। शेयर बाजार में लाभ हो सकता है, किन्तु नुकसान होने की संभावना अधिक रहती है। मुकेश ऐसे कोई लोगों को अच्छी तरह जानता था जो शेयर बाजार के धन्धे में अपना सब कुछ गंवा चुके थे। ऐसी स्थिति में उनकी तुलना में कम अनुभवी होकर वह कैसे इस व्यवसाय में कदम रख सकता है। अगर खोने लायक धन होता तो कोई बात नहीं थी। यदि हिसाब-किताब गड़बड़ा गया तो पांच साल की पूरी मेहनत मिट्टी में मिल जाएगी। अन्ततः मुकेश इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसके जैसे एक व्यक्ति को इतने कम मूलधन और अनुभव को लेकर शेयर बाजार में नहीं कूदना चाहिए।

मुकेश ने दूसरी संभावना के लाभ-हानि पर भी विचार किया। रियल-एस्टेट का धन्धा अब पहले जैसा आकर्षक नहीं रहा। जमीन और मकान खरीदने वाले कई लोग अब उससे छुटकारा पाने का प्रयास कर रहे हैं। मुकेश को लगा कि ऐसी स्थिति मे कर्ज लेकर रियल-एस्टेट के धन्धे में कूद पड़ना बुद्धिमानी की बात नहीं होगी।

अन्ततः उसने तीसरी संभावना को आजमाने का निर्णय लिया। धन बैंक में ही रहने दो। तीन साल में बीस लाख रूपया कुछ नहीं तो पच्चीस लाख तो हो ही जाएगा। कुछ पैसा पी.एफ. से भी निकल आएगा। कुल मिलाकर एक छोटा सा घर बनाया ही जा सकता है। अभी जितना रूपया मकान का किराया दे रहे हैं उससे पी.एफ. का रूपया वापस किया जा सकता है। मुकेश इस निर्णय पर पहुँचा कि कुछ भी हो ऐसा करना ही ठीक रहेगा।

तर्क हमारी बुद्धि को स्पर्श करता है। तर्क के आधार पर मन का विश्लेषण करने पर हम एक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। कई बार इसी निष्कर्ष को हम कायल होना कहते हैं।

निष्कर्ष (conclusion) और कायल (conviction) होने में क्या अन्तर है?

हम ने देखा कि निष्कर्ष तर्क का परिणाम है। अधिक सठीक तर्क (reasoning) से हम निष्कर्ष को उलट-पुलट कर सकते हैं। जमीन का धन्धा करनेवाला एक व्यक्ति यदि कहे कि भले ही अभी जमीन के दाम गिर गए हों, परन्तु सरकार जो नया भू-अधिनियम लाने जा रही है उसके कारण बहुत जल्द ही जमीन के भाव आसमान छूने लगेंगे, तो बहुत संभव है कि मुकेश धन को बैंक में जमा करने की अपनी योजना त्याग कर नये तर्क के आधार पर रियल-एस्टेट के धन्धे में कूद पड़े। निष्कर्ष (conclusion) को बदला जा सकता है। किन्तु कायल (conviction) होने की स्थिति को बदला नहीं जा सकता है क्योंकि वह तर्क से भी परे होता है।

यदि हम केवल तर्क पर आश्रित रहते हैं तो नये-नये तर्क हमें दुविधा में डाल सकते हैं। हो सकता है हम सन्देह में पड़ जाएँ कि कौन सा तर्क सही है, कौन सा निष्कर्ष अधिक बेहत्तर है। हो सकता है दोनों में ही हम तर्क ढूंढ़ लें। अगर हमें यह भी सही वह भी सही वाली स्थिति से गुजरना पड़े तो भ्रमित होना तो स्वाभाविक है।

किन्तु पवित्रात्मा का कार्य तर्क के कार्य से भिन्न होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह तर्क के विरोध में होता है। युक्ति का निश्चय ही अपना स्थान है। परमेश्वर से प्रेम करने और परमेश्वर के कार्य को प्रगट करने के लिये तर्क के बैठक के रूप में मनुष्य का मन एक अनिवार्य घटक है। किन्तु पवित्रात्मा हमें जो निश्चयता देता है वह तर्क की सीमाओं से बन्धा हुआ नहीं होता है। वह तर्क से परे होता है। जब तर्क मन (बुद्धि) में कार्य करता है तो पवित्रात्मा हमारे आत्मा में कार्य करता है (इसकी व्याख्या हम आगे करेंगे)।

वर्तमान में हमारी व्याख्याएँ कई बार कायल करने के बजाय दुविधा में डाल देने वाली होती हैं। पवित्रात्मा पर निर्भर हुये बिना स्वयं की बुद्धि के निरन्तर अभ्यास के द्वारा जब हम नए नए विचार निकालने का प्रयास करते हैं, तब कायल होने के बजाय हम भ्रम में पड़ जाते हैं। हो सकता है, नई व्याख्या में बुद्धि में तर्क के गढ़ का निर्माण करने की क्षमता हो किन्तु पवित्रात्मा के तर्क से परे आत्मा में प्रवेश करने से रोकने लायक बुद्धि सम्मत व्याख्याएँ अवरोध उत्पन्न करते हैं। केवल पवित्रात्मा ही हमारी आत्मा को छू सकता है। इसे जाने बिना कई बार हम तर्क का इस्तेमाल कर लोगों को कायल करने का प्रयास करते हैं। न केवल यह एक असफल प्रयास है परन्तु यह हमारे अहंकार का प्रगटीकरण भी होता है।

हममें इतनी नम्रता होनी चाहिये कि हम कह सकें कि पवित्रात्मा को अपना कार्य करने दो। कायल करना पवित्रात्मा का कार्य है, हमारा नहीं। उसे पवित्रात्मा को ही करना है। हम केवल इतना कर सकते हैं कि गवाह बन जाएँ। किन्तु कई बार विज्ञान के विद्वान अपनी विद्वता के आधार पर और तर्कों के द्वारा विरोधियों को घुटने टेकने पर मजबूर करने का प्रयास करते हैं। स्मरण कीजिए कि यह युद्ध नहीं है। हो सकता है कि विरोधी (यह शब्द ही कितना गलत है) हमारे ज्ञान के सामने अपने घुटने टेक दे; वा हो सकता है कि उनके तर्क - तर्कश के तीर - समाप्त हो जाएँ। किसी के मौन हो जाने से यह नहीं कहा सकता है कि वह कायल हो गया है। बहुत अधिक हुआ तो इतना कह सकते हैं कि हमने उन्हें दुविधा में डाल दिया है। पवित्रात्मा का कार्य - कायल करना - अभी भी शेष

रहता है। हमारी व्याख्या पवित्रात्मा द्वारा कायल किये जाने का मंच तैयार करने के लिये ही होनी चाहिये। पवित्रात्मा, आत्मा की कायल अवस्था से हमें भर देगा।

पवित्रात्मा का दूसरा बड़ा कार्य सत्य की ओर ले चलना है। यहाँ पर प्रभु पवित्रात्मा को सत्य की आत्मा सम्बोधित करता है। पवित्रात्मा वह व्यक्ति है जो परमेश्वर के सत्यों को मनुष्यों में और मनुष्यों को परमेश्वर के सत्य की ओर लाता है। वह तुम्हें सब सत्य का मार्ग बताएगा।

यहाँ पर प्रभु किसी ऐसी प्रक्रिया के बारें में बात नहीं कर रहा है जो पाप के अन्धकार में रहनेवाली जनता को सुसमाचार के सत्य की ओर ले जाती है। निश्चय ही पवित्रात्मा लोगों को अन्धकार से अद्‌भुत प्रकाश की ओर लाएगा किन्तु यहाँ पर प्रभु शिष्यों को सत्य की लाने की विषय में बात कर रहा है। क्या उन्होंने सत्य को नहीं जाना है? निश्चय ही उन्होंने जाना है! किन्तु उनका ज्ञान बहुत सीमित है इसलिये व्याख्या की आवश्यकता होती है। पवित्रात्मा यीशु के वचनों का ही उपयोग कर शिष्यों को नए नए सत्य की ओर ले जाएगा। यह प्रक्रिया आज भी जारी है।

व्याख्या का पहला लक्ष्य कायल करना है तो दूसरा लक्ष्य सत्य की ओर ले चलना है। वचन की व्याख्या हमें नए नए सत्य की ओर ले चलने वाली होनी चाहिए।

'मार्ग बताना' शब्द पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह एक प्रक्रिया है। कोई भी शिष्य सारे सत्य को एक ही दिन में नहीं समझ लेता है। सत्य यीशु के वचनों में है। इससे बढ़कर यीशु में सत्य है। पवित्रात्मा यीशु के सत्य की ओर - एक एक सत्य की ओर हमें ले चलता है। एक से दूसरे की ओर एक तीर्थयात्रा! यदि कहीं किसी एक स्थान पर हम भटक जाएँ तो नये सत्य की ओर हम नहीं जा पायेंगे।

पवित्रात्मा केवल मार्ग दिखाता है। वह धक्का देकर नहीं ले चलता है। आत्मा के आधीन होकर एक एक कदम आगे बढ़ाना हमारा कर्तव्य है। वरना किसी एक स्थान पर, सत्य के मार्ग के किसी एक कोने में हम अपनी बढ़ती को रोक कर कहीं मुरझाए खड़े रह जाएँगे।

हमने देखा कि वचन की व्याख्या पवित्रात्मा के साथ मिलकर की जानेवाली एक प्रक्रिया है। जब हम व्याख्या करते हैं तो आत्मा हमारे हृदय में गवाही देता है। पवित्रात्मा हमें आत्मा द्वारा कायल किये जाने की ओर और नये सत्य की ओर भी ले चलता है। आइये हम वचन के व्याख्या की एक बेहत्तर नमूने को देखें। और किसी की नहीं यीशु के ही वचन की व्याख्या का नमूना। यह हमें वचन की व्याख्या की कुछ

आधारभूत गलतियों और कुछ अनिवार्यताओं को देखने में हमारी सहायता करेगा।

यीशु के क्रूसीकरण तीसरे दिन यीशु के अनुयायियों में से कुछ स्त्रियाँ कबर पर गई परन्तु उन्हें यीशु की देह नहीं मिली। किन्तु उन्हें कुछ स्वर्गदूतों का दर्शन मिला जो यीशु के जी उठने की बात कर रहे थे। यह बात उन्होंने प्रेरितों को बताई। किन्तु उन्होंने उसे कहानी समझा।

उसी दिन - जी उठने के दिन ही - यीशु के शिष्यों में से दो लोग यरूशलेम में से सात मील दूर इम्माऊस गाँव की ओर जा रहे थे। उनकी यात्रा का विवरण सुमाचारक लूका 24 वें अध्याय में वर्णन करता है। यात्रा के दौरान वे उस दिन की घटनाओं के विषय में चर्चा कर रहे थे। स्त्रियाँ जब अति भोर को गई तो वहाँ पर उन्हें यीशु की लोथ नहीं मिली। पतरस ने भी जा कर देखा परन्तु उसे कपड़ा ही मिला, प्रभु की देह उसे नहीं मिली। क्या हुआ होगा? वे आपस में वादविवाद करने लगे।

जब वे इस प्रकार बादविवाद करते और तर्क-वितर्क कर रहे थे तब यीशु एक यात्री के भेष में उनके साथ मिल गया। किन्तु उनकी आँखें इस प्रकार से बन्द कर दी गई थीं कि वे यीशु को पहचान नहीं सके।

उसने उनसे पूछा, "तुम लोग किस विषय पर बातचीत कर रहे हो?" मुरझाए चेहरे के साथ वे अपने सहयात्री की ओर देखने लगे। उसमें से एक कैफा नामक व्यक्ति ने कहा, "इस फसह के पर्व के दौरान पर्व मनाने के लिये कितने ही विदेशी यरूशलेम में आये, क्या उनमें से केवल तू ही ऐसा है जिसने उन घटनाओं के विषय में नहीं सुना जो यरूशलेम में पिछले दिनों हुई हैं? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है!"

"कौन सी घटना?" परदेशी ने पूछा।

"हम नासरत निवासी यीशु के बारे में बात कर रहे हैं। परमेश्वर के सामने और सब मनुष्यों के सामने वह अद्‌भुत कामों और वचनों से भरपूर एक शक्तिशाली भविष्यद्वक्ता था, पर क्या करें हमारे महा पुरोहितों और पुरनियों ने इस बात को स्वीकार करना नहीं चाहा। उन्होंने यीशु को मृत्यु दण्ड दे दिया और उसे क्रूस पर चढ़ा दिया। हम यीशु के शिष्य थे। हमारी आशा भी यही थी कि यीशु इस्राएल का उद्धार करने के लिये परमेश्वर द्वारा भेजा गया मसीह है।"

अभी हम किसी और विषय पर बातचीत कर रहे हैं। यीशु का क्रूसीकरण हुये आज तीसरा दिन हैं। हममें में से कुछ स्त्रियाँ यीशु के मृत देह पर सुगन्ध द्रव्य का लेप लगाने के लिये आज सुबह कबर पर गईं थीं। कल तो सब्त का दिन था, इसलिये

वे कल नहीं जा सकीं थी। किन्तु आज सुबह जब वे कबर पर पहुंची तो उन्होंने वहाँ पर एक अद्‌भुत नजारा देखा। कबर पर जो भारी पत्थर रखा हुआ था, वह हटा हुआ था। यीशु का शरीर कबर में दिखाई भी नहीं दिया। उन्होंने लौट कर हमें समाचार दिया। और तो और वे यह भी कह रहे थे कि कुछ स्वर्गदूतों ने उन्हे दर्शन दिया है और उन्होने कहा है कि यीशु जी उठा है। हम सब बहुत घबरा गये। क्या ऐसा हो सकता है? यह जानने के लिये हम में से कुछ लोग कबर पर भी गये। जैसा स्त्रियों ने कहा था वैसा ही हमने वहाँ पाया! यीशु का शरीर कब्र में नहीं था। हम इसी विषय पर बातचीत और तर्क वितर्क कर रहे हैं।

यह सुनकर यीशु ने उनसे कहा (उन्होंने नहीं जाना कि वह यीशु है), "ओहो, तो ये बात है!! तुम इतने बुद्धिहीन कैसे हो गये? तुम्हारी समस्या यह है कि तुम लोग भविष्यद्धक्ताओं की बातों पर विश्वास नहीं करने वाले मन्दबुद्धि हो। क्या तुम लोग भविष्यद्धक्ताओं की बातें नहीं समझते? मसीह को सारे दुःखों को भोगने के बाद ही परमेश्वर द्वारा तैयार किये गये महिमा में प्रवेश करना है।"

यह कह कर यीशु ने मूसा से और सब भविष्यद्धक्ताओं से आरम्भ करके सारे पवित्रशास्त्र में से अपने विषय में लिखी बातों का अर्थ, उन्हें समझा दिया (लूका 24:13-27)।

यहाँ यीशु द्वारा वचन की व्याख्या किये जाने की बात की गई है। प्रभु वचन की व्याख्या क्यों करता है? इसका एक कारण है - उसके शिष्यों ने वचन को गलत रीति से समझा था। ऐसा नहीं था कि वे वचन को नहीं जानते परन्तु वे वचन की त्रुटिपूर्ण व्याख्या को जानते थे। एक सीमा तक कह सकते हैं कि वे व्याख्या करनेवालों के धोखे का शिकार थे!

शिष्यों को यीशु के विषय में एक बड़ी आशा थी - कि वह इस्राएल को छुड़ाने के लिये परमेश्वर द्वारा भेजा गया मसीह है! (पद 21)।

उन दिनों लगभग सभी यहूदी, मसीह की प्रतीक्षा किया करते थे, किन्तु वे सब एक राजनैतिक मसीह का इन्तजार करते थे - जो रोम की अधीनता से उन्हें छुड़ाने में शक्तिशाली और सामर्थी हो।

उन दिनों में पलीस्तीन में ऐसे कई लोग रहा करते थे जो यीशु को मसीह के रूप में देखते थे। इसलिये तो एक बार उन्होंने यीशु को राजा बनाने का भी प्रयास किया था। कुछ दिनों पहले यीशु ने गद्‌हे के बच्चे पर चढ़कर यरूशलेम की ओर जो विजय यात्रा की थी, तब लोगों ने होशन्ना के नारे इसी उम्मीद से लगाए थे कि यीशु

उनका प्रतीक्षित मसीह है। यीशु के शिष्यों ने भी यीशु से ऐसी ही अपेक्षा की थी।

किन्तु यीशु की क्रूस मृत्यु ने उनकी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया था। हो सकता है कि उन्होने आशा की हो कि अपने जीवनकाल में यीशु ने जितने आश्चर्यकर्म किए उन सब से बढ़कर यीशु क्रूस पर से उतर कर सबको चकित करेगा। ऐसा भी नहीं हुआ, यीशु को क्रूस पर चढ़ा दिया गया, वह गाड़ा गया। सबसे बड़ी आशा ने सबसे बड़ी निराशा के लिये मार्ग प्रशस्त किया। अब यरूशलेम में रह कर क्या करें? गाँव वापस जाने के अलावा कोई चारा नहीं है।

हो सकता है, आप पूछें कि शिष्यों की मसीह संबन्धी आशा और उसके टूटने में वचन की व्याख्या की क्या भूमिका है? किन्तु यीशु का कहना है कि वचन की व्याख्या में जो त्रुटि हुई, वही सारे भ्रम का कारण था।

शिष्यों की मसीह संबन्धी आशा को वचन ने ही बढ़ाया था। मूसा से लेकर सारे नबी और वचन के अन्य भाग भी! इसी के माध्यम से उन्होंने जाना था कि मसीह आनेवाला है। किन्तु उनसे इतनी गलती हुई कि उन्होने भविष्यद्धक्ताओं की बातों में से केवल कुछ ही बातों को ग्रहण किया। उन्होंने वचन में केवल महिमामय और तेजोमय मसीह को ही देखा। यदि वे वचन को अच्छी रीति से समझते तो दुःखभोगी मसीह को भी देखते। भविष्यद्धक्तागण एक ऐसे मसीह से हमारा परिचय कराते हैं जो दुःख भोगने के बाद महिमा में प्रवेश करता है (पद 26)।

यदि हम एक ऊँचे टीले पर चढ़कर दूर देखें तो हमें दूर क्षितिज तक फैली पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर होंगी। पहली नजर में हम वहाँ पंक्तिबद्ध खड़ी पहाड़ियों को ही देख पाते हैं। किन्तु हम जिन पहाड़ियों को देखते हैं, उन सब के मध्य एक एक घाटी भी होती है। यह भी संभव है कि वहाँ पर कुछ लोग रहते हों, मकान हों, फैक्ट्रियाँ हों, जिन्दगियाँ हों.....। किन्तु हम केवल पर्वतों को देखते हैं।

मसीह कहता है कि बाइबल की व्याख्या में भी यही खतरा होता है। तुम ने भविष्यद्धक्तओं की सारी बातों पर विश्वास नहीं किया। उनके वचनों में निहित सारी बातों को नहीं देखा। तुम ने केवल पर्वतों को देखा, घाटियों को अनदेखा किया। मसीह की महिमा को देखा, किन्तु मसीह के दुःख को नहीं देखा। घाटियों को पार करके ही पर्वत की चोटी तक पहुंचा जा सकता है। तुम ने नहीं जाना कि कष्ट भोग कर ही महिमा में प्रवेश किया जा सकता है।

इस्राएल में अधिकांश लोग महिमामय मसीह का सपना देखने वाले थे। शिष्यों ने भी ऐसे ही मसीह को देखा। यह खतरा हमेशा होता है। बहुसंख्यक लोगों के विश्वास (Popular Faith) का पीछा करने की आदत...। किन्तु वचन अकसर बहुमत के विपरीत दिशा में होता है।

भविष्यद्धक्ताओं की पुस्तक में दुःख भोगने वाले और महिमा प्राप्त करने वाले मसीह के विषय में निश्चित विवरण होने के बावजूद बहुसंख्यक लोगों द्वारा एक महिमामय मसीह का इन्तजार करने की सीमा तक वचन की व्याख्या के बिगड़ जाने का कारण क्या हो सकता है?

इसका कारण यह है कि लोकप्रिय व्याख्या करने वाले हमेशा बहुसंख्यक लोगों की पसन्द के अनुसार वचन निकाल कर प्रदर्शित करते हैं। राजनैतिक गुलामी में रहनेवाले लोगों को आनन्द देने वाली बात केवल यही हो सकती थी कि उनका छुटकारा होगा और उन्हें सताने वाले लोगों को दण्ड देने के लिये एक विजेता मसीह आएगा। इसलिये इस्राएल के सारे वचन के पण्डितों ने आकाश चीर कर उतर आने वाले मसीह के विषय में प्रचार किया। सब ने खूब तालियां भी बटोरी। इसके बजाय यदि उनसे कहा जाता कि मसीह भी उनके समान सताया जाएगा, मार खाएगा, लोग उसके मुँह पर थूकेंगे तो कौन ऐसे वचनों को सुनना चाहता। कौन ताली बजाता? कौन दान पेटियों में रुपया डालता?

आज ऐसे लोगों की भरमार है जो लोगों की इच्छा के अनुसार वचन की व्याख्या करते हैं। लोग भी सत्य नहीं परन्तु खुशी चाहते हैं चाहे वह क्षणभंगुर ही क्यों न हो।

यह भी पूछा जा सकता है कि लोगों को जो चाहिये वही तो दिया जाना चाहिये। एक बात स्मरण रखना है कि लोगों की आवश्यकता और लोगों की इच्छा दोनों भिन्न भिन्न हो सकती हैं। संभव है कि एक शक्कर की बीमारी वाला लड्डू खाना पसन्द करे परन्तु उसके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक करेले का रस ही होगा। यदि पड़ोसी उसे लड्डू दे तो वह खुश हो जाएगा और करेले का रस लेकर आने वाली पत्नी से वह क्रोधित भी हो सकता है। पड़ोसी प्रेम के कारण लड्डू दे रहा है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि पत्नी क्रोध के कारण करेले का रस दे रही है। यह स्मरण रखना है कि आपकी सहयात्री आपकी पत्नी है, आपका पड़ोसी नहीं।

जब सभी लोगों ने भविष्यद्धक्ताओं की पुस्तकों में महिमामय मसीह को ही देखा तो कम से कम शिष्यों को तो दुःख भोगी और दास का रुप धारण करनेवाले मसीह को देखना चाहिये था परन्तु यहां पर शिष्यगण भी महिमामय मसीह की ही खोज में थे।

लोकप्रिय व्याख्याताओं से सहयोग न कर केवल सत्य का प्रचार करने वाले एक भविष्यद्धक्ता के बारे में 2 इतिहास 18वें अध्याय में बताया गया है - उसका नाम मीका था।

इस्राएल का राजा अहाब और यहूदा का राजा यहोशापात एक अपवित्र बन्धन में बंध गए। उन्होने एक साथ गिलाद के रामोत शहर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। युद्ध के लिये निकलने से पहले यहोशापात ने पूछा, "क्या हम भविष्यद्धक्ताओं से न पूछें? युद्ध में जाने से पहले हम यहोवा के भविष्यद्धक्ताओं से एक बार पूछ लेते हैं।"

अहाब राजा ने चार सौ भविष्यद्धक्ताओं को बुलाकर उन से परमेश्वर की इच्छा पूछी। सभी चार सौ भविष्यद्धक्ताओं ने एक स्वर में कहा,"किसी बात से भयभीत न हो, युद्ध के लिये निकल पड़ो। तुम लोग रामोत को अपने वश में कर लोगे।"

अहाब से मित्रता रखने के बावजूद यहोशापात में आत्मिकता अभी शेष थी। इन चार सौ भविष्यद्धक्ताओं की बात सुनकर भी यहोशापात सन्तुष्ट नहीं हुआ। उस ने पूछा, "परमेश्वर की इच्छा पूछने के लिये क्या यहाँ और कोई भविष्यद्धक्ता शेष है?"

"हाँ, एक व्यक्ति शेष है।" अहाब राजा ने कहा। "फिर भी उसे न बुलाना ही ठीक रहेगा क्योंकि वह हमेशा मेरी इच्छा के विरूद्ध भविष्यद्धाणी करता है। मैं उसे पसन्द नहीं करता हूँ, इसलिये आज कल मैं उसे बुलाता ही नहीं हूँ।"

अहाब के कथन पर ध्यान दीजिए। भविष्यद्धक्ता मेरी इच्छा के विरूद्ध बोलता है इसलिये मैं उसे नहीं बुलाता हूँ।

क्या भविष्यद्धक्ता परमेश्वर का सन्देश वाहक नहीं है? क्या वह परमेश्वर का सन्देश नहीं कहता है? जब परमेश्वर का सन्देश मनुष्य को दिया जाता है तब क्या महज इसलिये कि संदेश उसे पसन्द नहीं है, वह उसे बदल सकता है? सभी चार सौ भविष्यद्धक्ताओं ने एक सा संदेश दिया। अब बात यहाँ तक कि पहुंच चुकी है कि सन्देश देने वाला नहीं परन्तु सन्देश सुननेवाला तय करता है कि क्या सन्देश दिया जाना चाहिये।

किन्तु मीका नबी बहुजनों की इच्छा के अनुसार बदलने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने कहा, रामोत जाने के लिये परमेश्वर ने तुम से नहीं कहा है और यदि तुम चले भी जाओगे तो तुम सकुशल वापस नहीं लौटोगे। मीका नबी ने जैसा कहा था वैसा ही हुआ।

जब सब लोग महिमामय मसीह को ही देखते हैं तो दुःखभोगी मसीह को भी देखना सही व्याख्या का परिणाम होता। जब सब लोग समृद्धि संबन्धित पदों को ही खोज खोज कर पढ़ते हैं तब दुःख भोगने के लिये मुझे वरदान मिला है, जैसे पदों

को भी देखने वाला ही वचन का वास्तविक व्याख्याता है।

उन शब्दों पर ध्यान दीजिये जिनसे यीशु अपने शिष्यों को सम्बोधित करता है। "हे बुद्धिहीनों, भविष्यद्धक्ताओं की बातों पर विश्वास न करने वाले मन्दमतियों....(लूका 24:25)। "O fools, and slow of heart to believe all that the prophets have spoken.(Luke 24:25)"

यहां पर प्रभु कहता है कि उनकी बुद्धि में ही नहीं बल्कि उनके हृदय में भी गड़बड़ी है। वे निर्बुद्धि (foolish) हैं, हृदय में धीमा (slow of heart) है। यहाँ पर निष्कर्ष यह है कि लोकप्रिय व्याख्या के चंगुल में फंसे किसी व्यक्ति की बुद्धि और हृदय दोनों सही रीति से काम नहीं करते हैं। वे भविष्यद्धक्तओं की सभी बातों पर विश्वास करने के लिये तैयार नहीं होते हैं। ऐसा भी नहीं कि उन्होने विश्वास ही नहीं किया है बल्कि उन्होंने केवल उन बातों को स्वीकार किया जो उन्हें प्रसन्नता देती थी। उन्होंने महिमा को स्वीकार किया परन्तु दुःख को अस्वीकार कर दिया था।

वचन को आंशिक रूप से छोड़ देने और आंशिक रूप से स्वीकार करने का खतरा कम नहीं है। कहा जाता है कि आधा झूठ पूरे झूठ से भी भयानक होता है। यह बहुत ही सही है।

महाभारत के युद्ध के दौरान पाण्डव एक बहुत बड़े धर्म संकट में फँस गये थे। लगातार अपने असीमित तरकश से बाण निकालकर अपनी अचूक निशाने से द्रोणाचार्य युद्ध कर आगे बढ़ते जा रहे थे। पाण्डव कौरवों में से किसी का भी सामना कर सकते हैं किन्तु द्रोणाचार्य का सामना करना आसान नहीं है। क्योंकि द्रोणाचार्य ने ही पाण्डवों को युद्धकला सिखाया था। जिन विधाओं को द्रोणाचार्य नहीं जानते हैं उन्हें पाण्डव भी नहीं जानते हैं। क्या किया जाए? द्रोणाचार्य को रोकना ही होगा। उनका सामना कर उन्हें रोकना किसी के लिये भी सम्भव नहीं था। द्रोणाचार्य स्वयं युद्ध रोकें तभी यह सम्भव होगा। क्या किया जाए?

विधाओं का ज्ञाता श्रीकृष्ण सामने आये। द्रोणाचार्य के एकलौते पुत्र अश्वथामा को मरना होगा। यदि वह मर जाए तो द्रोणाचार्य युद्ध रोक सकते हैं। तब पाण्डव आगे बढ़ सकते हैं।

किन्तु अश्वथामा को मारना भी आसान नहीं है। वह भी एक निपुण सैनिक है। अभी अश्वथामा किसी दूसरे हिस्से पर युद्ध कर रहे हैं। अब क्या करें? क्यों न अश्वथामा के मरने की अफवाह उड़ा दी जाए? द्रोणाचार्य के विश्वास करने की

सम्भावना तो नहीं है। युद्ध में चतुराई तो बहुत है। और द्रोणाचार्य इतने बुद्धिशाली तो हैं ही कि वे झूठी ख़बर को ताड़ लें।

अन्ततः श्रीकृष्ण ने ही एक तरीका ढूँढ़ निकाला। यदि धर्मराज स्वयं कहें कि अश्वथामा मर गया तो द्रोणाचार्य विश्वास करेंगे क्योंकि धर्मराज झूठ नहीं बोलते हैं। किन्तु धर्मराज इस बात पर अड़ गये कि भले ही वे युद्ध हार जाएँ पर झूठ नहीं बोलेंगे। पुनः श्रीकृष्ण की बुद्धि ने काम किया।

सेना में से एक हाथी लेकर उसे अश्वथामा नाम दिया गया। भीम ने उसे मार दिया। सब लोग जयघोष करने लगे। "अश्वथामा मर गया, अश्वथामा मर गया।"

आवाज सुनकर द्रोणाचार्य क्षणभर के लिये चकित रह गए। तत्पश्चात् धर्मराज को पुकार कर उन्होंने पूछा, "सच बताओ, क्या अश्वथामा मर गया?" धर्मराज संकोच में पड़ गये। फिर उन्होंने कहा, "मर गया।" फिर उससे भी धीमी आवाज में उन्होंने कहा, "अश्वथामा नामक हाथी मर गया।"

द्रोणाचार्य ने धनुष-बाण नीचे रख दिये। और अर्जुन ने बाण चला दिया। कुरूक्षेत्र युद्ध के दौरान धर्मराज द्वारा कहा गया आधा सच ने पूरे युद्ध की दिशा को ही बदल डाला था।

वचन की व्याख्या में भी आज की समस्याओं का मुख्य कारण अधूरे सत्यों का शोर है। भविष्यद्वक्ताओं की बातों को पूर्ण रीति से स्वीकार किये बिना केवल कुछ बातें ही स्वीकार करना.....महिमा को स्वीकार करना और दुःख को स्वीकार नहीं करना.....।

उन शिष्यों को जो आंशिक ज्ञान रखते थे, उन्हें प्रभु पूर्ण ज्ञान की ओर लिये चलता है। यही सही व्याख्या का लक्ष्य होता है। आंशिकता से पूर्णता की ओर लोगों को ले चलना (नेतृत्व किया जाना)। इसके लिये प्रभु वचन में से होकर एक यात्रा ही करता है। "तब उसने मूसा से और सब भविष्यद्वक्ताओं से आरम्भ करके सारे पवित्रशास्त्र में से अपने विषय में लिखी बातों का अर्थ, उन्हें समझा दिया" (लूका 24:27)।

वचन में से यदि किसी भाग की व्याख्या करनी हो तो उस भाग में प्रत्येक विषय पर जो कुछ कहा गया है उस संबंध में सामान्य ज्ञान अति अनिवार्य होता है। परमेश्वर के वचन को काट छांटकर अपनी पसन्द के अनुसार स्वीकार करने से यह सामान्य ज्ञान हमें प्राप्त नहीं होता है। इसके लिये वचन के विषय में और वचन के मर्म के विषय में एक गंभीर समझ (Holistic understanding) होनी अति आवश्यक है।

यह केवल ज्ञानियों को ही उपलब्ध बात नहीं है। जितने लोग बाइबल पढ़ना जानते हैं (जो पढ़ नहीं सकते, वे सुनने के द्वारा) इस अवलोकन को बड़ी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। जैसा कि पहले बताया गया, केवल यह कि हमें एक सीखने वाले पठन की आदत डालना होगा। यहां वहां से वचन को पढ़ने के अलावा कभी कभी समय निकाल कर एक एक पुस्तक का गंभीर अवलोकन करना चाहिये। जब प्रभु शिष्यों को वचन की समझा रहा था तो अवलोकन पर जोर देकर व्याख्या करता है। मूसा से लेकर भविष्यद्धक्ताओं तक सम्पूर्ण वचन। इन सभी स्थानों पर मसीह के विषय में क्या कहा गया है...?

हम कह सकते हैं कि यीशु द्वारा वचन की व्याख्या ने उनके सभी सन्देहों को मिटा दिया। व्याख्या के पश्चात् हम भ्रम की ओर नहीं परन्तु कायल होने की दशा की ओर प्रवेश करते हैं। शिष्यगण यीशु को (बिना समझे कि यह यीशु ही है) अपने साथ रहने का निमन्त्रण दिया। यीशु उनके साथ रहने गया, उनके साथ भोजन करने हेतु बैठने के दौरान उसने रोटी लेकर धन्यवाद किया और उन्हें दिया। जल्द ही उनकी आँखें खुल गईं। वे प्रभु को पहचान गये। इसके बाद यीशु उनके सम्मुख से अप्रत्यक्ष हो गया।

अब वे पुराने शिष्य नहीं रहे।। यीशु के द्वारा वचन की सठीक व्याख्या ने उन्हें पूरी रीति से बदल कर रख दिया। वे आशा की ओर लौट चले। अब वे जानते थे कि क्रूस पर यीशु के साथ जो कुछ हुआ, वह पराजय नहीं था बल्कि महिमा में प्रवेश करने का एक मात्र मार्ग था। उन्होंने जाना कि दुःख भोगने वाला मसीह महिमा पाकर जी उठा है। सुबह जब स्त्रियों ने कहा था कि उन्होंने दूतों को यह कहते हुये सुना कि वह जी उठा तो वे चकित रह गये थे। अब पुनरूत्थित यीशु को साक्षात् देखने पर वे आनंदित हुये। यीशु ने वचन की जो व्याख्या की, उसने सब कुछ बदल कर रख दिया।

वे परस्पर कहते हैं कि किस प्रकार यीशु की व्याख्या ने उनके जीवन में कार्य किया।

उन्होंने आपस में कहा, "जब वह मार्ग में हम से बातें करता था और पवित्रशास्त्र का अर्थ हमें समझाता था, तो क्या हमारे मन में उत्तेजना उत्पन्न न हुई?" (लूका 24:32)

वे कहते हैं कि यीशु द्वारा वचन की व्याख्या को उन्होंने तीन तरह से अनुभव किया।

1. उसने वचन को प्रमाणित किया।

यीशु द्वारा वचन की व्याख्या सबसे पहले शिष्यों की बुद्धि - मन - को स्पर्श करता है। कारणों और तर्कों सहित यीशु ने सब कुछ उन्हें समझाया। हर एक

भविष्यद्वक्ता ने प्रत्येक पुस्तक में मसीह के विषय में जो कुछ कहा था, उसकी व्याख्या ने उनके मन के सभी भ्रम और सन्देहों को दूर कर दिया और उन्हें कायल होने - इस बात पर कि मसीह दुःख भोग कर ही महिमा में प्रवेश करेगा - की ओर ले गया। यह उनकी बुद्धि को स्पर्श करने वाली बात थी।

निश्चय ही परमेश्वर मनुष्यों के तर्कों का आदर करता है। तर्क करने की क्षमता निश्चय ही मनुष्यों के अन्दर परमेश्वर के स्वरूप का एक प्रमाण भी है। वचन की व्याख्या में भी मनुष्य की तर्क शक्ति कार्य करती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संपूर्ण वचन की व्याख्या तर्क के साथ करना है। कभी कभी वचन हमारे तर्कों से परे भी जा सकता है। किन्तु कभी कभी वचन हमारे तर्कों से परे होने पर भी तर्क के विरूद्ध नहीं होता है। जब प्रभु ने वचन की व्याख्या की तब शिष्यों को वह तर्क संगत लगा। प्रभु ने जो बातें उन्हें बताई थी उन पर पुनः चिन्तन करने पर प्रभु के दावे - मसीह दुःख भोग कर ही महिमा में प्रवेश करेगा - उन्हें तर्क संगत लगा। उनकी बुद्धि खुल गई।

पतरस भी कहता है कि हमारा विश्वास तर्क संगत होना चाहिये। "जो कोई तुमसे तुम्हारी आशा के विषय में कुछ पूछे उसे उत्तर देने के लिए सर्वदा तैयार रहो, पर नम्रता और भय के साथ।।" (1 पतरस 3:15)।

ऐसे लोगों से सतर्क रहना चाहिये जो वचन की तर्कसंगत व्याख्या नहीं करते हैं। उनका दावा होता है कि जो कुछ वे कहते हैं, वह सब प्रकाशन है। उनकी व्याख्याओं में कोई भी सामान्य व्यक्ति किसी प्रकार का तर्क नहीं देख पाता है। वे कहते हैं कि जिनके पास प्रकाशन है, वे ही ऐसी बातों को जान पाते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने प्रकाशन के अनुसार व्याख्या करता है तो सामान्य व्यक्ति को अधिकार है कि उस विषय में प्रश्न करे। यदि वह बुद्धि में प्रवेश नहीं करता है तो ऐसी व्याख्या के साथ बड़ी सतर्कता के साथ व्यवहार करना चाहिये।

कुरिन्थियों को पत्र लिखते हुए पौलुस कहता है,कि

"इसलिए हे भाईयों, मैं तुम्हारे पास आकर अन्य भाषाओं में बातें करूँ और प्रकाश या ज्ञान या भविष्यवाणी या उपदेश की बातें तुमसे न कहूँ तो मुझसे तुम्हे क्या लाभ होगा?" (1 कुरि० 14:6)

यहाँ प्रेरित प्रकाशन और ज्ञान को अलग अलग रूप में देखता है। ज्ञान का अर्थ बुद्धि क्षेत्र के व्यवस्थित विचारों से है। किन्तु प्रकाशन एक सेवक के आत्मा में उत्पन्न प्रकाशन (Intution) है।

जब प्रकाशन किसी से कहा जाता है तब वह भविष्यवाणी बन जाता है। यहाँ भविष्यवाणी तात्पर्य परमेश्वर की आर से बोलने से है-उसे वेदी पर से भी कहा जा सकता है।

ज्ञान बांटने पर वह उपदेश हो जाता है। ज्ञान में से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। भविष्यवाणी के लिये प्रकाशन का सहारा चाहिये।

जिस प्रकार ज्ञान में से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, उसी प्रकार यह भी महत्वपूर्ण है कि भविष्यवाणी में से उपदेश नहीं दिया जा सकता। उपदेश तर्कसंगत होना चाहिये, उस पर सवाल नहीं उठना चाहिये। (1 पतरस 3:15)

चूँकि प्रकाशन तर्क से परे होता है इसिलिये कभी कभी प्रकाशन की तर्कसंगत व्याख्या कठिन होती है। किन्तु उपदेश सदा तर्कसंगत होना चाहिये। इसिलिये उपदेश का आधार ज्ञान ही होना चाहिये। किसी के व्यक्तिगत प्रकाशन के आधार पर वचन की व्याख्या कर सिखाने वाली संस्थाएँ ही कई बार गलत शिक्षा केन्द्रों के रूप में बदल जाती हैं।

2. "जब वह वचन को प्रमाणित करता है तब क्या हमारे हृदय में प्रश्न नहीं उठ रहा था?"

यदि यीशु द्वारा वचन की व्याख्या ने शिष्यों की बुद्धि को प्रकाशित किया तो उसका अगला कार्य उनके हृदय को जलाना था। यदि मन तर्क का बैठक है तो हृदय भावनाओं का निवास है। मूसा से लेकर सब भविष्यद्धक्ताओं ने सभी पुस्तकों में मसीह के विषय में जो कुछ कहा था उनकी व्याख्या यीशु ने शिष्यों के सामने की। वे नहीं जानते थे कि उनके साथ वास करने वाला यीशु है। वे उसके विषय में सोच रहे थे कि वह कोई परदेशी है जो यरूशलेम में आराधना करने आया था। किन्तु प्रत्येक भाग की व्याख्या ने उनके हृदय को भर दिया। उस अजनबी के शब्दों में उन्होंने यीशु को देखा। यीशु के शब्दों और कार्यों को उन्होंने पुनः याद किया। उनका हृदय यीशु के लिये जागृत हो उठा। वे जानते थे कि मसीह दुःख भोग चुका है किन्तु उनके मन का सन्देह था कि दुःख भोगने वाला मसीह था या नहीं। अब उस सन्देह का निराकरण हो गया था। उनकी बुद्धि में यह बात प्रगट हो गई कि यीशु ही मसीह है। अब यह ज्ञान उनके हृदय में, भावनाओं के रूप में प्रवेश कर रहा है। यीशु को देखने और अनुभव करने की इच्छा उनके भीतर प्रस्फुटित हो उठी है। उनका एक एक कण यीशु का प्यासा हो उठा है। उनका हृदय जल उठा है। उनकी भावनात्मक दुनिया सजीव हो उठी है।

वचन की व्याख्या केवल बुद्धि को ही स्पर्श नहीं करती है बल्कि हृदय में आग भी लगना चाहिये। यह व्यक्तियों में यीशु के लिये इच्छा को बढ़ाना चाहिये। शिष्यगण जो इम्माऊस की ओर जा रहे थे वे बुद्धिहीन (Foolish) और बिना धड़कन (Slow of heart) के थे। उनकी ये दोनों समस्याएँ यीशु ने वचन की व्याख्या के द्वारा दूर कर दिया। यीशु ने उनकी बुद्धि को स्पर्श किया और हृदय में आग पैदा की। वचन की व्याख्या बुद्धि और भावनाओं को स्पर्श करनेवाला होना चाहिये।

कुछ लोगों के प्रवचन बहुत बौद्धिक होते हैं। अपने तर्कों से वे हमें आकाश पर चढ़ा देते हैं। परमेश्वर के वचन की अलग अलग भाषाओं के अनुवाद का उपयोग कर उसके भेदों को बताते हैं। किन्तु प्रवचन में जलने की अवस्था में नहीं होती है। वह हमारी बुद्धि के अलावा हृदय को स्पर्श नहीं कर पाता है। उसे सुनकर प्रवचनकर्ता के ज्ञान पर आश्चर्य करने के अलावा यीशु के प्रति हमारे मन में किसी प्रकार का प्रेम नहीं उमड़ पाता है।

कुछ और लोगों के प्रवचन ठीक इसके विपरीत होते हैं। वहां तीव्र अग्नि होती है। प्रवचनकर्ता अकेले खड़ा होकर जलता रहता है। जिस प्रकार जोकर कलाबाज़ी कर स्वयं हंसता है। किन्तु प्रवचन के कुछ समय बाद यदि प्रवचनकर्ता या श्रोताओं में से किसी से पूछा जाए कि प्रवचन क्या था तो वे स्मरण नहीं कर पाते हैं। क्योंकि उसने बुद्धि को प्रमाणित नहीं किया। किसी प्रकार का नया सन्देश नहीं दिया।

3. आत्मा में कायल होना।

वचन की सटीक व्याख्या बुद्धि को प्रमाणित करने और हृदय को जलाने के साथ साथ एक और कार्य करता है। वह बुद्धि और भावनाओं से परे आत्मिक स्तर पर उतर कर आत्मा को कायल करता है।

हम ने देखा कि वचन का वास्तविक व्याख्याता पवित्र आत्मा है। यह तब स्पष्ट होता है जब हम पूरी रीति से कायल हो जाते हैं। आप पूछ सकते हैं कि क्या पहले के दोनों स्तरों - बुद्धि को प्रमाणित करने और हृदय को जलाने के समय - आत्मा का कार्य नहीं होता है? निश्चय ही होता है, किन्तु आत्मा के कार्य की अनुपस्थिति में भी एक बुद्धिमान प्रवचनकर्ता आपकी बुद्धि को प्रमाणित कर सकता है और आपकी भावनाओं में उथल-पुथल मचा सकता है। किन्तु केवल पवित्र आत्मा ही आत्मा में उतर सकता है। पवित्र आत्मा के कार्य की अनुपस्थिति में भी किसी व्यक्ति को निष्कर्ष

(conclusion) की ओर पहुंचाया जा सकता है। किन्तु केवल पवित्र आत्मा ही आत्मा में कायल (conviction) कर सकता है। पवित्र आत्मा के बहाव के बिना भी हृदय को गरम करने की सीमा तक भावनाओं का उतार चढ़ाव हो सकता है किन्तु पवित्रआत्मा ही आत्मा को स्पर्श कर सकता है।

यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि बुद्धि और भावनाओं के स्तर पर पवित्रात्मा कभी काम नहीं करता है। यीशु स्वयं अपने शिष्यों की बुद्धि को प्रमाणित करता और हृदय में अग्नि उत्पन्न करता है। किन्तु एक व्यक्ति यह कार्य कर सकता है, यह कहना और एक व्यक्ति ही यह कार्य कर सकता है, यह कहना दोनों दो अलग अलग बातें हैं। बुद्धि और हृदय को पवित्र आत्मा भी स्पर्श कर सकता है और एक बुद्धिमान प्रवचनकर्ता भी स्पर्श कर सकता है। किन्तु आत्मा को केवल पवित्रात्मा ही स्पर्श कर सकता है।

हमें भी वचन की व्याख्या के दौरान पवित्रात्मा की सहायता से और पवित्रात्मा के द्वारा ही लोगों के मन और हृदय को स्पर्श करना चाहिये। किन्तु यदि यहीं पर सब कुछ समाप्त हो जाती हैं तो यह बहुत ही दुःखद बात होगी। व्याख्या को अधिक गहराई तक, आत्मिक स्तर तक उतरना ही चाहिये।

पवित्रात्मा की गवाही का हमारे आत्मा में उतरना एक प्रक्रिया है। उसके विभिन्न स्तरों पर ही बुद्धि प्रमाणित होती और हृदय में आग पैदा होती है। इसलिये आत्मा की यात्रा में हम मन और हृदय को अनदेखा नहीं कर सकते हैं।

शायद व्याख्या की यात्रा को इस प्रकार समझाया जा सकता है।

एक. वह मन (बुद्धि) को प्रमाणित करता है।

दो. वह हृदय (भावनाओं) में आग पैदा करता है।

तीन. वह आत्मा को कायल करता है।

पवित्रात्मा तीनों स्तरों पर कार्य करता है। किन्तु कायल होना आत्मिक स्तर पर होता है। यही बना रहता है।

आगे हम देखते हैं कि सटीक व्याख्या एक और कार्य करती है।

"उसी समय वे उठकर यरूशलेम को लौट गये।" (लूका 24:33)

वे यरूशलेम से इम्माऊस की यात्रा पर निकले थे। शाम बहुत बीतने पर वे इम्माऊस पहुंचे थे। किन्तु वचन की व्याख्या ने उनमें कार्य किया। उन्होंने यीशु को पहिचान लिया। उन्होंने अपनी आत्मा में अपने कार्य के विषय में निश्चयता पाई। उसी समय वे यरूशलेम को लौट गये।

इम्माउस से यरूशलेम की दूरी 7 मील थी। अभी शाम हो चुकी है। अब यदि यरूशलेम लौटना हो तो रात में यात्रा करनी होगी। यात्रा में ख़तरा भी है। यही नहीं, वे अभी अभी यरूशलेम से आये हैं। फिर तुरंत लौटना थोड़ा कठिन तो है। किन्तु शिष्यों ने किसी बात की परवाह नहीं की। उन्होने थकावट को नज़र अंदाज कर दिया। रात के ख़तरों से भयभीत नहीं हुए। वे उसी समय लौट गये।

यदि वचन की व्याख्या सटीक हो तो वह कार्य करेगा। यहां पर यीशु की व्याख्या ने केवल शिष्यों की बुद्धि को प्रकाशित और हृदय में जलन पैदा ही नहीं किया। बल्कि उनकी आत्मा को सशक्त भी किया था। आत्मा में स्पर्श पाने के बाद व्यक्ति लौटे बिना नहीं रह सकता। उसे पुनः स्थापित होना ही होगा।

वचन पुनःस्थापित करनेवाला है। पुनःस्थापन के लिये कई बार कीमत चुकानी पड़ती है। अपने स्वभाव को परिवर्तित करना पड़ता है; कई सुखों को छोड़ना और ख़र्च करना पड़ सकता है। ख़तरों को अनदेखा कर अनिश्चितता की ओर कदम बढ़ाना पड़ सकता है....

किन्तु आज लोग इस प्रकार वचन की व्याख्या करते हैं कि किसी को भी कोई मूल्य चुकाने की आवश्यकता न हो। हर कोई अपनी वर्तमान दशा में बना रह सकता है। किसी प्रकार की परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। "प्रभु आनेवाला है इसलिये आओ हम आनन्द करें। हमारे दुःख सब समाप्त होनेवाले हैं इसलिये हम आनन्द करें।" यही सब सुनना हम पसन्द करते हैं। उनका कहना भी गलत नहीं है। सही बात है। भविष्यवाणियों का पूरा होना, मिलापवाला तम्बू, युगों का अध्ययन....जैसी बातें हमें गहरे भेद सिखाती हैं। किन्तु किसी में कोई परिवर्तन नहीं लाता है। व्याख्याता भी नहीं चाहता है कि कोई परिवर्तन हो। किन्तु वचन हमेशा पुनःस्थापित करने वाला होना चाहिये।

पतरस पास्टर ने एक बार प्रवचन के दौरान एक संस्मरण बताया : उन दिनों की बात थी जब वे किसी कलीसिया में पास्टर थे। एक दिन एक बुजुर्ग माता ने उनसे कहा, "पास्टर, मैं ने एक दर्शन देखा है। उसका अर्थ क्या है?"

"आप दर्शन तो बताओ। मेरे पास ऐसा कोई वरदान तो नहीं है, फिर भी मैं कोशिश करता हूँ।" पास्टर ने कहा।

"मैं ने अपनी कलीसिया में एक शिशु को देखा। नया जन्मा शिशु....इसका अर्थ क्या होगा पास्टर?" बुजुर्ग माता ने पूछा।

"इसमें विशेष व्याख्या की आवश्यकता तो नहीं है, माँ।" पास्टर ने कहा। "प्रभु ने ही कहा है, कि यदि हम शिशु के समान नहीं होंगे तो स्वर्गराज्य में प्रवेश नहीं कर पाएँगे। इस दर्शन का अभी मिलना यह बता रहा है कि यदि आप शिशु के समान नहीं बनते हैं....हठ छोड़कर सरल हृदया बनकर.....।"

"अरे पास्टर, उसका अर्थ यह नहीं है।" माताजी ने पास्टर को टोका।

"तो फिर आप ही बताईये कि इसका अर्थ क्या है।" पास्टर ने कहा।

"उसका अर्थ है, कि हमारी कलीसिया में परमेश्वर बहुत सी नई आत्माओं को देने वाला है।" बुजुर्ग माता ने घोषणा की।

अब यह तो नहीं मालूम कि व्याख्या सही थी या गलत किन्तु एक बात स्पष्ट थी कि उनकी व्याख्या से किसी को कोई चोट नहीं पहुंचनेवाली थी। किसी को दुःखी होने या क्रोधित होने की आवश्यकता नहीं थी। हर कोई आनन्द कर सकता था। क्योंकि यह व्याख्या किसी से किसी प्रकार की कीमत चुकाने की माँग नहीं कर रहा था।

आज ऐसी व्याख्याओं की पूछ परख ज्यादा है जिसमें किसी को कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ती है...जो सबको खुश रखता है। किन्तु इस प्रकार की झूठी व्याख्याएँ करनेवाले उपदेशक वचन को व्यापार का साधन बनाते हैं।

वचन की व्याख्या के प्रमाण इस पुस्तक में नहीं दिये गये हैं। कुछ मूलभूत बातें ही बताई गई हैं जिन्हें हमें वचन की व्याख्या के दौरान स्मरण रखना है।

एक, वास्तविक व्याख्याता पवित्रआत्मा है। इसलिये आत्मिक शक्ति के बिना वचन की व्याख्या परिणाम नहीं दे सकती है। प्रत्यक्ष रूप से वचन की व्याख्या कोई भी करे किन्तु पवित्रआत्मा द्वारा हृदय में गवाही दी जानी चाहिये। आत्मा हमें कायल करेगा - पाप के विषय में, धार्मिकता के विषय में, और न्याय के विषय में।

आत्मा हमें सत्य की ओर ले चलेगा - सारे सत्य की ओर। वचन की व्याख्या

को कायल करनेवाला और नई सच्चाई की ओर ले जाने वाला भी होना चाहिये।

किसी की भी व्याख्या यीशु की व्याख्या के तुल्य नहीं हो सकती है। उसने सिखाया कि वचन के विषय में गंभीर अवलोकन अति आवश्यक है। भविष्यद्वक्ताओं द्वारा कही गई सभी बातों पर विश्वास करना है। केवल कुछ एक बातों को अपने लिये अलग नहीं करना है।

यीशु द्वारा वचन की व्याख्या ने शिष्यों की बुद्धि को प्रकाशित किया। हृदय में आग उत्पन्न किया; उनकी आत्मा में हलचल मची। वे पुनःस्थापित हुये। वचन की व्याख्या पुनःस्थापित होने और मूल्य चुकाने के लिये प्रेरणा देनेवाली होनी चाहिये।

13 आईना देखने वाले

समय, सुबह के 8 बज कर 20 मिनट। शोभना आइने के सामने ही खड़ी थी। एक घण्टे से वह तैयार हो रही थी। अब तक उसका श्रृंगार खत्म नहीं हुआ है।

"अरे लड़की 8:30 को बस आ जाएगी। तू जा रही है कि नहीं।" माँ ने आवाज दी।

एक मिनट माँ। शोभना ने आइने में अपने चेहरे का निरीक्षण किया। कल ब्यूटी पार्लर जाकर जो मैकअप् करवाया था, ठीक से हुआ कि नहीं। अरे यह क्या आँख के नीचे ये काला निशान क्या? ओह! क्या करें? विमला दीदी ने बताया था कि खीरा का रस लगाने से यह ठीक हो जाएगा।

"माँ, जब तू सब्जी लेने जाएगी तो खीरा भी लेकर आना।" माँ को पुकारते हुये उसने कहा। यह सुनकर माँ को आश्चर्य सा हुआ। जो लड़की सब्जी को हाथ तक नहीं लगाती। जो लड़की सब्जी देखकर नाक मुँह सिकोड़ती है, वह आज कैसे खीरा लाने के लिये कह रही है?

साढ़े आठ बजने में पान्च मिनट शेष रह गया था, जब शोभना आइने के पास से हटी। बैग लेकर वह गेट की तरफ दौड़ पड़ी। "हे परमेश्वर, पता नहीं आज गाड़ी मिलेगी भी कि नहीं। पहली कक्षा जीव ज्ञान का है। अगर देर हो गई तो टीचर क्लास में घुसने नहीं देगी।

पिछले कई दिनों से शोभना की माँग थी कि उसके कमरे में एक ड्रेसिंग टेबल होनी चाहिए। वॉश बेसिन के पास जो आइना लगा था, उसमें साफ साफ दिखाई नहीं देता है। भूख हड़ताल करके ही सही आखिरकार उसने ड्रेसिंग टेबल खरीदवा ही लिया। आइने के ऊपर एक सौ वॉट का बल्ब भी लगवा लिया। हाँ, अब जाकर अच्छे से मैकअप् कर पाऊँगी।

आइये इस बात का थोड़ा विश्लेषण करें कि एक व्यक्ति आइने में देखकर क्या क्या करता है। ऊपरी तौर पर एक व्यक्ति को आइने के सामने खड़े होकर कंघी करते या चेहरा चमकाते ही देखा जाता है। किन्तु एक व्यक्ति जब आइने के सामने खड़ा होता है तो उसके मन में कई विचार और तरीके घुमड़ने लगते हैं।

आइने में देखने वाला व्यक्ति क्यों बार बार अपने प्रतिबिम्ब को बारीकी से देखता है? क्या अपने सौन्दर्य को देखने के लिये? हाँ, कई लोग ऐसे होते हैं, जो अपने चेहरे को देखकर मजा लेते हैं किन्तु अक्सर लोग अपने चेहरे से खुश नहीं होते हैं। लोग आइने में इसलिये नहीं देखते हैं, कि अपने चेहरे का मजा लूटे किन्तु इसलिए कि दूसरों के सामने प्रस्तुत होने के लिये अपने चेहरे को अधिकाधिक सुन्दर बना सकें।

शोभना आइने में देखती है। वह आइने में अपना चेहरा देखती है। उसे अपना चेहरा पसन्द है। किन्तु कहीं न कहीं उसके मन में यह इच्छा दबी हुई है कि काश कि उसका चेहरा और सुन्दर होता। काश कि उसके भौंह थोड़े और घुमावदार होते... आँखें के नीचे काले गड्हे न होते...। मुँहासों के दाग मिट गये होते...होंठो पर जरा सी और लालिमा होती...।

जब वह आइने में अपना चेहरा देख रही होती है तो उसके मनरूपी दर्पण में एक और चेहरा प्रगट होता है। अपनी कल्पना में उसने अपना जो पूर्ण चित्र खींच रखा है! शोभना की कल्पना में प्रगट होनेवाली शोभना।

अगली बार जब वह आइने में देखती है तो दो चेहरा देखती है। आँखों के नीचे गढ्ढों,काले होंठो वाली शोभना ठीक सामने और उसके कल्पना की शोभना मन की आँखें में।

ठीक सामने वह चेहरा होता है जिसे संवारना है। उसे कैसे संवारना है? कल्पना में जो चेहरा है, उसके समान उसे संवारना है। इसलिये हर एक व्यक्ति आइने के सामने समय व्यतीत करता है। अन्ततः चेहरा चमकाते चमकाते जब कल्पना में दिखनेवाले चेहरे से लगभग मेल खाने वाला रुप प्राप्त हो जाता है तो सन्तुष्टि के साथ हम आइने के सामने से हट जाते हैं।

प्रेरित याकूब कहता है कि वचन भी आइने के समान है।

"जो कोई वचन का सुननेवाला हो और उस पर चलनेवाला न हो, तो वह उस मनुष्य के समान है जो अपना स्वाभाविक मुख (वास्तविक मुख) दर्पण में देखता है। इसलिये कि वह अपने आप को देखकर चला जाता और तुरन्त भूल जाता है कि मैं कैसा था। परन्तु जो व्यक्ति स्वतन्त्रता की सिद्ध व्यवस्था पर ध्यान करता रहता है, वह अपने काम में इसलिये आशीष पाएगा कि सुनकर भूलता नहीं पर वैसा ही काम करता है।" (याकूब 1:23-25)।

वचन रूपी आइने में हम अपने दृश्य चेहरे को नहीं देखते हैं बल्कि अपने स्वभाव को देखते हैं। वचन में मैं अपने स्वाभाविक चेहरे को देखता हूँ।

स्वाभाविक चेहरा क्या है? यहाँ पर सामान्य अर्थ से थोड़ी भिन्नता है। हमारा असली चेहरा (हमार स्वभाव) से तात्पर्य नहीं है। यहाँ इसका अर्थ है कि स्वाभाविक तौर पर हमारा जो चेहरा होना चाहिए था। यदि किसी आई०ए०एस या किसी प्रोफेसर का बेटा दसवीं क्लास में फेल हो जाए तो हम कहेंगे कि स्वाभाविक रूप से उसे तो अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण होना चाहिए था। यहाँ पर हम बच्चे का दो स्तर देखते हैं। एक माता-पिता की पृष्ठभूमि के अनुरूप हमने जिस परिणाम की अपेक्षा की; दूसरा बच्चे की शोचनीय दशा।

परमेश्वर ने जिस प्रथम मनुष्य की सृष्टि की थी उसकी दशा मेरे समान शोचनीय नहीं थी। परमेश्वर ने अपने स्वरूप और समानता में मनुष्य की सृष्टि की थी। उसे परमेश्वर का स्वरूप और समानता प्राप्त थी। वह परमेश्वर नहीं था किन्तु परमेश्वर के समान था। इसलिये परमेश्वर के साथ उसकी संगति थी। वह बढ़ रहा था। वह परमेश्वर के स्वरूप और समानता में बढ़ रहा था।

किन्तु मनुष्य ने परमेश्वर के साथ प्रतिद्वंदिता की। परमेश्वर के साथ संगति तजकर उसने शैतान के साथ संगति करने का चुनाव किया। वह परमेश्वर से दूर होकर शैतान के निकट चला गया। उत्पत्ति की पुस्तक तीसरे अध्याय में इसका वर्णन किया गया है। हम इसे मनुष्य जाति का पतन कह सकते हैं। किन्तु ठीक से देखें तो यह पतन नहीं परंतु कूदना था। हम इसे कूदने का चुनाव कह सकते हैं या जान बूझकर गिरना कह सकते हैं। गिरने के बाद उसे गहराई का पता चला। कूदने को तो वह कूद गया लेकिन बिना सहायता से वह वापस नहीं आ सकता।

इस पतन ने मनुष्य को बरबाद कर के रख दिया। उसका स्वरूप बदल दिया। उसका स्वभाव बदल गया। उसका चेहरा बदल गया। परमेश्वर के साथ संगति

करनेवाले मनुष्य में परमेश्वर के गुण चमकते थे किन्तु शैतान के साथ संगति करने के कारण उसमें शैतान के स्वभाव प्रगट होने लगे। मनुष्य जिसे परमेश्वर के स्वरूप में होकर बढ़ना था वह शैतान के अनुरूप बढ़ने लगा। यही आज के मनुष्य की विकृत दशा का कारण है। यदि मनुष्य का पतन नहीं हुआ होता, तो पाप संसार में नहीं आया होता। यदि पाप ने मुझे विकृत न किया होता तो स्वाभाविक रूप से मुझ में परमेश्वर का स्वरूप होना चाहिए था। इस 'स्वाभाविक चेहरा' नामक प्रयोग का अर्थ है वह चेहरा जिसकी उम्मीद थी। किसकी उम्मीद? किसी और की नहीं परमेश्वर की ही। परमेश्वर जिस चेहरे की मुझसे उम्मीद करता है। यदि मैं परमेश्वर की ही संगति में बना रहता, यदि पाप ने सब कुछ उलट-पुलट न कर दिया होता तो मेरा कैसा तेजोमय स्वरूप होता। उसी को मैं वचन में देख पाता हूँ।

मुझे स्वयं को देखने के लिये वचन में जाने की आवश्यकता नहीं है। मेरे चारों ओर के लोग मुझे यह बतला देंगे। अथवा सच्चाई के साथ मुझे स्वयं को देखने की जरूरत भर है। हम अपने स्वरूप को तो देख सकते हैं, किन्तु स्वाभाविक रूप से मेरा जो स्वरूप होना चाहिये था, परमेश्वर मुझमें जिस स्वरूप की उम्मीद करता है, वह केवल परमेश्वर का वचन ही मुझे बता सकता है। परमेश्वर मुझसे क्या उम्मीद करता है, इसे मैं वचन में ही पाता हूँ।

आईना, जिस स्वरूप को हमारे सामने प्रगट करता है, उससे ठीक विपरीत स्वरूप को वचन रूपी दर्पण हमें बताता है। आईने में हम अपने विकृत स्वरूप को देखते हैं और एक पूर्ण स्वरूप को भावनाओं में देखते हैं। वचन रूपी आईने में हम पूर्णता वाला चेहरा-परमेश्वर मुझसे जिस चेहरे की उम्मीद करता है-उसे देखते हैं। हम अपने विकृत चेहरे को मन में देखते हैं। वचन सुननेवाले से परमेश्वर उम्मीद करता है कि वह परमेश्वर के वचन दिखने वाले, परमेश्वर की इच्छा में निहित पूर्ण मनुष्य का चेहरा (यदि पाप प्रवेश न किया होता तो वही उसका स्वाभाविक स्वरूप होता) और पाप द्वारा विकृत अपने वर्तमान चेहरे से तुलना कर अपने विकृत स्वरूप को उस स्वरूप से बदल डाले।

यदि मैं ने पाप न किया होता तो किसके समान होता? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। क्या परमेश्वर के मन में वह पूर्ण मनुष्य आदम था?

नहीं, कभी नहीं। हमें जानने की आवश्यकता है कि आदम पाप किये बिना परमेश्वर के स्वरूप में बढ़ता तो वह किसके समान बनता।

हमें जानकारी मिलती है कि परमेश्वर के मन में एक ही पूर्ण मनुष्य है। वह उसका पुत्र यीशु मसीह मात्र है। आदम भी पूर्ण मनुष्य नहीं था। परमेश्वर यही चाहता

था कि आदम भी परमेश्वर की संगति में बढ़कर मसीह के समान हो जाए।

परमेश्वर चाहता है कि पृथ्वी पर का हर एक व्यक्ति आगे चलकर मसीह के समान बन जाए। और स्पष्ट कहें तो इसी पूर्ण धारणा के साथ परमेश्वर ने अपने प्रत्येक प्रेम करने वाले को पृथ्वी पर रखा है।

"क्योंकि जिन्हें उसने पहले से जान लिया है उन्हें पहले से ठहराया भी है कि उसके पुत्र के स्वरूप में हों, ताकि वह बहुत भाइयों में पहिलौठा ठहरा।" (रोमियों 8:29)।

परमेश्वर का एक ही अनन्त पुत्र है - यीशु मसीह जो पूर्ण मनुष्य है। किन्तु परमेश्वर की इच्छा यही थी कि प्रत्येक व्यक्ति जिसकी सृष्टि हुई है परमेश्वर की संगति में बढ़कर मसीह-समान बने और मसीह पहिलौठा-शेष सब उसके भाई-के स्तर तक पहुंचें। अभी भी परमेश्वर यही चाहता है। किन्तु परमेश्वर की संगति में ही यह बढ़ोत्तरी संभव है। किन्तु क्या कर सकते हैं? मनुष्य ने पाप करके परमेश्वर की संगति को छोड़ दिया। हमें मसीह को देखकर ऊपर की ओर बढ़ना था किन्तु शैतान को देखकर हम नीचे की ओर उतरते चले गए।

किन्तु जो लोग परमेश्वर की मुख्य धारा में वापस आना चाहते हैं उन्हे परमेश्वर की संगति में वापस लाने के लिए, उसमें बाधक पाप की दीवार को तोड़कर यीशु उद्धारक बना। आदम के पाप करने से यदि पाप उसके और परमेश्वर के मध्य दीवार बन गई तो मसीह द्वारा छुड़ाये गये लोग एक एक कर पाप की दीवार के उस पार ईश्वरीय संगति में प्रवेश करते हैं। किन्तु यह एक प्रारंभ मात्र है। हमारे प्रति परमेश्वर की इच्छा हमें पाप की दीवार के उस पार पहुँचाने से समाप्त नहीं हो जाता। हमें और बढ़ना-'मसीह रूपी सिर तक' बढ़ना है। यह परमेश्वर की संगति से ही संभव होगा। पाप से उद्धार पाने के ठीक पहले तक यह हमारे लिए संभव नहीं था। क्योंकि हम सब 'पतित' लोग थे। पतन की अवस्था (fallen stage) में एक व्यक्ति पतित होता ही जाता है। अब वह स्वयं कितना भी परिश्रम करे, तो पतन के आघात को ही कम कर सकता है, पाप की दीवार पर चढ़ उस पार नहीं उतर सकता है। यदि वह ऊपर न चढ़े तो वह परमेश्वर की संगति नहीं प्राप्त कर सकता है। यदि परमेश्वर की संगति प्राप्त नहीं होती है, तो बढ़ोत्तरी भी नहीं होती है। जो व्यक्ति बढ़ता नहीं है, वह परमेश्वर के पुत्र के स्वरूप के अनुरूप नहीं हो सकता है! परमेश्वर का अनुग्रह! परमेश्वर का अनुग्रह! परमेश्वर के पुत्र ने हमारा उद्धार कर पाप की दीवार के दूसरी तरफ परमेश्वर की संगति में लाकर खड़ा किया है। अब बढ़ना है....तब तक जब तक परमेश्वर के अनुरूप न हो जाएं!

वचनरूपी दर्पण में हम परमेश्वर के पुत्र का स्वरूप देखते हैं। वह चेहरा जिसमें हमारे प्रति परमेश्वर की इच्छा निहित है। यदि पाप बीच में नहीं आता तो स्वाभाविक रूप से वही चेहरा हमारा होना था। अभी वह विकृत हो चुका है फिर भी परमेश्वर की इच्छा में जो चेहरा है वह उसके पुत्र के अनुरूपता में हमारे बढ़ने की सम्भावना है। उद्धार पाने के द्वारा हम पुनः परमेश्वर की संगति में वापस आ गये हैं। अब वचन में जो चेहरा हम देखते हैं जैसा स्वाभाविक रूप से होना चाहिये था उसके पुत्र के स्वरूप के अनुसार हमें बढ़ना है। इसलिये परमेश्वर ने हमें पहले से ठहराया है।

दोनों की लोग वचनरूपी आईने में देखते हैं। वह भी जो वचन सुनकर इस पर चलता नहीं, वह भी जो वचन सुनकर उसके अनुसार चलता है। दोनों समूह अपना स्वाभाविक चेहरा देखता है किन्तु दोनों में यह दो प्रकार का परिणाम लाता है।

उस व्यक्ति का उदाहरण लीजिये जो केवल वचन को सुनता है पर उस पर चलता नहीं है। कलीसियाई आराधना में या पारीवारिक आराधना में, टीवी में, कैसेट से, हो सकता है उसने वचन सुना हो। यह भी नहीं कह सकते हैं कि उसने वचन को ध्यान

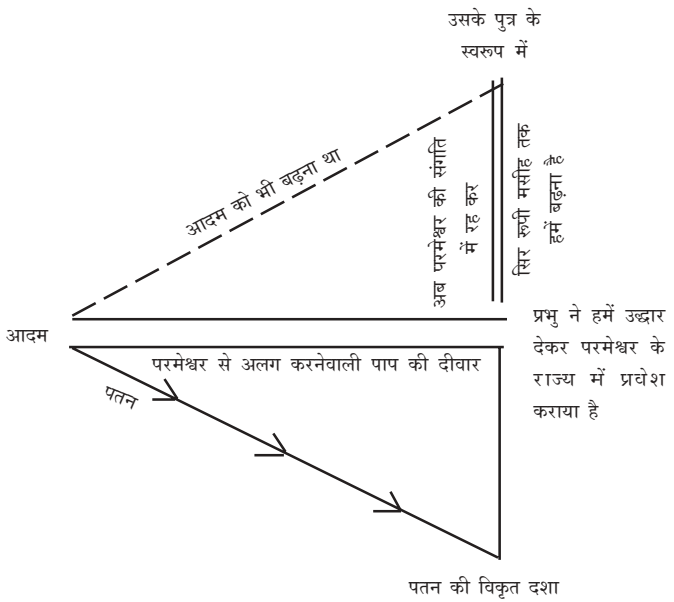

नहीं दिया है क्योंकि उसने अपरा स्वाभाविक चेहरा - उसके प्रति परमेश्वर की जो इच्छा है उसे उसने वचनरूपी आईने में उसने देखा है। हो सकता है यह कलीसिया का कोई प्रमुख व्यक्ति हो, हो सकता है वह वचन को सुननेवाला ही नहीं वचन को बोलनेवाला भी हो। वचन के द्वारा परमेश्वर की इच्छा को जानने के कारण उसके अन्दर पश्चाताप उत्पन्न होता है। इसका अर्थ है कि उसके हृदय में सच्चाई है। किन्तु वचनरूपी आईने में उसने जिस स्वरूप से परिचित हुआ है और इसका वर्तमान विकृत स्वरूप इन दोनों की तुलना करने के लिये और उसमें सुधार करने के लिये वह तैयार नहीं होता है।

क्या आप कई बार लोगों को यह कहते हुये नहीं सुना है? "हाँ भाई, ऐसा ही होना चाहिये। परमेश्वर यही चाहता है, यही आत्मिक व्यक्ति का लक्षण है बगैरह - बगैरह।" इसका अर्थ है कि वचनरूपी दर्पण में उसने अपना स्वाभाविक चेहरा देख रखा है। किन्तु यह सब कहने के द्वारा वह स्वाभाविक चेहरा प्राप्त करने के लिये वह जान बूझकर कोई परिश्रम या कार्य नहीं करता है।

यह दुर्घटना हम सब के साथ हो सकती है। हम वचन में आनन्दित होते हैं, वचन में दिखने वाले परमेश्वर के इच्छा के विषय में बातचीत करते हैं। इस बात से शोकित होते हैं कि हम परमेश्वर की इच्छा के अनुसार बृद्धि प्राप्त नहीं किये हैं किन्तु ये सारी भावनायें सुनने तक ही सीमित हो जाती हैं। एक बार देखने के बाद वह चला जाता है (पद 24)। बैठकर विश्लेषण करने और वचन के अनुसार जीवन के व्यवस्थित करने के लिये उसके पास समय नहीं होता है और भी कई कार्य उसे करने होते हैं। घर के कार्य, नौकरी की बातें, कलीसिया की बातें.....(हो सकता है वचन को सिखाने का कार्य भी इस सूची में शामिल हो) काम के बोझ के तले दबे रहना दुर्घटणा है। वचन में होकर हम ने परमेश्वर की इच्छा का जो स्वरूप समझा था उसे हम भूल जाते हैं। फिर हम सोचते हैं कि हम परमेश्वर की इच्छा में ही हैं। हम बीच बीच में वचन को सुनते और बीच बीच में आत्मिक अनुभव प्राप्त करते भी तो हैं। फिर यदि नहीं कर पाते हैं तो यह व्यस्तता के कारण होता है (कई बार यह व्यस्तता आत्मिक व्यस्तता भी हो सकती है)।

दर्पण में जो प्रतिबिम्ब दिखता है उसमें भी हम एक नजर में अपना वर्तमान चेहरा देख सकते हैं किन्तु हमारे विचारों में जो पूर्ण चेहरा है वह मन में आने में थोड़ा समय लगता है, उसके बाद तुलना, उसके बाद चमकाना। एक बार दर्पण में देख कर चले जानेवाला व्यक्ति केवल बाहरी तौर से ही देखता है। वह अपनी कुरूपता या

कुरूपता को नहीं देखता है। वह अपनी भावना में स्वयं को सुन्दर नहीं देखता है। उपरोक्त कहानी में वर्णित शोभना के समान धण्टों आईने के सामने बैठने के लिये वह समय नहीं निकाल पाता है। किन्तु ऐसे व्यक्ति के चेहरे पर दाग-धब्बे शेष रह जाते हैं।

वचन को केवल सुनकर उस पर नहीं चलने वाला व्यक्ति - वचन में जो परमेश्वर की इच्छा का चेहरा दिखता है उस स्वरूप के अनुसार अपने विकृत स्वरूप को नहीं बदलने वाला स्वयं को धोखा देता है ऐसा याकूब कहता है (याकूब 1:22)।

स्वयं को धोखा देता है जैसे प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि यह व्यक्ति सच्चा व्यक्ति है (जिसके हृदय में सच्चाई नहीं है वह धोखा भी नहीं दे सकता है)। केवल हृदय में सच्चाई होना ही आपके आत्मिकता की ग्यारन्टी नहीं बनती है परमेश्वर की इच्छा में जो स्वरूप है उसके अनुरूप हमें बनाना ही होगा।

कार्य करनेवाला वचनरूपी आईने में स्वयं को देखता है। वचन में वह अपने विषय में परमेश्वर की इच्छा को जान लेता है। व्यस्तता के बिना उसमें देखने के लिये उसके वर्तमान स्वरूप की विकृती उसके मन में एक एक कर के आती है। अब वह दोनों रूप देखता है, परमेश्वर की इच्छा में निहित पूर्ण स्वरूप और अपना विकृत स्वरूप। वह तुलना करता है.....कमी कहाँ पर है? कहाँ पर गढ्ढे हैं? कहाँ पर दाग-धब्बे हैं....वह उसे संवारता है। परमेश्वर का स्वरूप प्राप्त करता है।

यह धन्य दशा उसकी है जो वचन में बना रहता है। छुटकारे की व्यवस्था को देख कर उसमें बने रहनेवाला व्यक्ति सुनकर भूलने वाला नहीं परन्तु कार्य करनेवाला बन कर जो कुछ वह करता है उसमें वह धन्य बनता है (*पर जो व्यक्ति स्वतन्त्रता की सिद्ध व्यवस्था पर ध्यान करता रहता है, वह अपने काम में इसलिये आशीष पाएगा कि सुनकर भूलता नहीं पर वैसा ही काम करता है* (याकूब 1:25)।

यहां पर याकूब दो बातों पर जोर देता है। पहला, वचन में बने रहना। दूसरा, कार्य करना।

जो वचन में बना नहीं रहता है, जो उसमें लगातार यात्रा नहीं करता है, जो वचन में निवास नहीं करता है वह बना नहीं रहता है। इसलिये अपने विश्वास करनेवाले यहूदियों से यीशु ने कहा, "यदि तुम मेरे वचन में बने रहोगे, तो सचमुच मेरे चेले ठहरोगे" (यूहन्ना 8:31)।

वचन में ठकठकी लगाकर देखे बिना, उसमें बने रहे बिना, हम परमेश्वर की इच्छा को जान नहीं सकते हैं। हम अपनी विकृत दशा को नहीं समझ पाते हैं। उसकी

तुलना कर उबड़-खाबड़ जगहों को भर कर समतल किये बिना परमेश्वर के पुत्र के स्वरूप की अनुरूपता हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। बिना वचन में बने रहे हम उसके सच्चे शिष्य नहीं बन सकते हैं।

केवल वचन में बने रहना ही नहीं हमें कार्य भी करना चाहिये। जो कार्य नहीं करता है वह अनुग्रह की दशा को प्राप्त नहीं करता है। प्रभु कहता है, "इसलिये जो कोई मेरी ये बातें सुनकर उन्हें मानता है, वह उस बुद्धिमान मनुष्य के समान ठहरेगा जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया" (मत्ती 7:24)।

वचन को सुननेवाला नहीं उसको सुनकर उसमें चलनेवाला बुद्धिमान होता है। और जो सुनकर चलता नहीं वह निबुर्द्धि है (मत्ती 7:26)।

14 आत्म शक्ति से आज्ञा पालन की ओर

रामू और श्याम दोनों पांच वर्ष की उमर तक - माता पिता के साथ गलियों में पले बढ़े थे। किन्तु दमा से पीड़ित होने और गांजे के नशे में फँसकर एक दिन पिता की मृत्यु हो गई। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि एक दिन सड़क दुर्घटना में उसकी माँ भी चल बसी।

किसी दयावान ने दोनों बच्चों को एक अनाथालय में पहुंचा दिया। समाचार पत्र में इन बच्चों की कहानी पढ़कर एक डॉक्टर ने उन्हे गोद लेने का निर्णय लिया। कानूनी औपचारिकताएँ पूरी करने के बाद डॉक्टर दोनों बच्चों को कार में अपने घर की ओर ले जा रहे थे। जब कार अपनी मंजिल तय कर रही थी तो पीछे की सीट पर बैठे रामू ने श्याम से कहा, "सुनो श्याम, घर पहुचने के बाद फिर से अपना पुराना स्वभाव नहीं दिखाना। ये जो कुछ कहेंगे, वह सब चुपचाप मान लेना। कहीं ऐसा न हो कि यह हमें घर से बाहर निकाल दें?"

कई बार हम भी परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन इसी कारण करते हैं। हम पाप के गड्ढ़े और गन्दगी में पड़े हुये थे, हम अनाथ थे, प्रभु हमारे पास नीचे उतर आया और हमारी दीन हीन दशा से हमें छुड़ाकर हमें अपने राज्य में प्रवेश दिलाया है। हम उसके भवन की ओर, स्वर्ग की ओर यात्रा कर रहे हैं। हमें अब पुराना स्वभाव नहीं दिखाना चाहिए। प्रभु की बातों का पालन करना है। वरना कहीं प्रभु हमें बाहर ही निकाल न दें....कहीं स्वर्ग में प्रवेश करने ही न दे।

अधिकांश लोग इस भय से आज्ञाओं का पालन करते हैं कि कहीं स्वर्ग में प्रवेश निषिद्ध न हो जाये। यदि किसी आज्ञा के पालन न करने पर भी स्वर्ग में प्रवेश पाने की संभावना को तो हम उस आज्ञा का पालन न करना अधिक पसंद करते हैं।क्या सिनेमा देख़ने पर भी स्वर्ग जा सकते हैं? तो फिर सिनेमा देख़ने का मजा क्यों छोड़ें?

स्वर्ग में प्रवेश पाने की निम्नतम योग्यता क्या है? स्वर्ग में प्रवेश की अनुमति खोए बिना हम कितनी आज्ञाओं का उलंघन कर सकते हैं?

यदि स्वर्ग जाने और आज्ञा पालन में संबन्ध नहीं होता तो क्या हम उन आज्ञाओं का पालन करते जिनका आज हम कर रहे हैं? स्वयं विचार करें; अन्यथा हम भी रामू और श्याम के समान कहते - आज्ञा का पालन कर लेते हैं, कहीं ऐसा न हो कि वह हमें घर से बाहर निकाल दें!!

यदि हम अब भी केवल इस भय से आज्ञाओं का पालन करते हैं कि कहीं स्वर्ग हम से छीन न जाए तो इसका तात्पर्य है कि हम अभी तक गूलामी से पूरी रीति से छुड़ाये नहीं गये हैं। रामू और श्याम को डॉक्टर जैन गुलाम के रूप में नहीं परन्तु बेटों के रूप में घर लेकर आये हैं। वह परमेश्वर की सन्तान है, वह परमेश्वर का वचन सुनता है (यूहन्ना 8:47)। पुत्रों द्वारा पिता का वचन सुनना, उनकी आज्ञा का पालन करना इस भय के साथ नहीं होता है कि पालन न करने से कहीं वह घर से न निकाल दे; इसलिये है कि वह घर का सदस्य है। पिता घर की बातें करता है, घर की बातें उसकी भी बातें है।

परमेश्वर के भवन में हमें इस स्वतन्त्रता का अनुभव करना है। कहीं घर से न निकाल दे जैसे भय के साथ रहने की दशा से हमें बाहर निकलना है। दास को ही बाहर निकाला जाता है। दास हमेशा के लिये घर में नहीं रहता है। उसके घर का अस्तित्व मालिक की आज्ञाओं का पालन करने पर निर्भर होता है किन्तु पुत्र हमेशा घर में रहता है (यूहन्ना 8:35)। पुत्र भी पिता के आज्ञाओं का पालन करता है किन्तु दास भय के साथ पालन करता है तो पुत्र स्वतन्त्रता के साथ पालन करता है। "क्योंकि तुम को दासत्व की आत्मा नहीं मिली कि फिर भयभीत हो, परन्तु लेपालकपन की आत्मा मिली है, जिससे हम हे अब्बा, हे पिता कहकर पुकारते हैं" (रोमियों 8:15)।

प्रभु कहता है, "यदि तुम मुझ से प्रेम रखते हो, तो मेरी आज्ञाओं को मानोगे" (यूहन्ना 14:15)।

यहां पर वचन का पालन करने के विषय में प्रभु पुराने नियम से भिन्न एक बात कहता है। पुराने नियम में कहा गया था, "जिस मार्ग पर चलने की आज्ञा तुम्हारे

परमेश्वर यहोवा ने दी है उस सारे मार्ग पर चलते रहो, कि तुम जीवित रहो, और तुम्हारा भला हो, और जिस देश के तुम अधिकारी होंगे उसमें तुम बहुत दिनों तक के लिये बने रहो" (व्यवस्थाविवरण 5:33)। पालन करोगे तो तुम जीवित रहोगे वरना मर जाओगे। पालन करोगे तो लम्बी आयु पाओगे वरना आयु कम हो जाएगी। "इसलिये तुम मेरे नियमों और मेरी विधियों को निरन्तर मानना; जो मनुष्य उनको माने वह उनके कारण जीवित रहेगा। मैं यहोवा हूँ" (लैव्यव्यवस्था 18:5)।

पुराना नियम और नया नियम दोनों में ही आज्ञाएँ हैं। आज्ञाओं का पालन भी है। किन्तु पुराना नियम में भय के कारण आज्ञाओं का पालन किया जा रहा था। नया नियम में यीशु कहता है, भय छोड़ो! प्रेम स्वीकार करो!!

भय छोड़ने का अर्थ क्या है? इसका अर्थ आज्ञाओं को छोड़ना नहीं है। दास और पुत्र दोनों ही आज्ञाओं का पालन करते हैं। किन्तु पुत्र प्रेम के कारण आज्ञाओं का पालन करता है। प्रेम में भय नहीं होता। जब प्रेम पूर्णता की ओर बढ़ता है तो भय बाहर हो जाता है। दण्ड ही भय को लाता है। दण्ड के भय से आज्ञा पालन करने वाला प्रेम में सिद्ध नहीं हुआ है (1 यूहन्ना 4:18)। इस भय से कि कहीं स्वर्ग खो न जाए, यदि हम अब भी आज्ञाओं का पालन करते हैं तो वास्तव में हम प्रभु के प्रति प्रेम में सिद्ध नहीं हुए हैं।

"क्योंकि परमेश्वर से प्रेम रखना यह है कि हम उसकी आज्ञाओं को मानें; और उसकी आज्ञाएँ कठिन नहीं" (1 यूहन्ना 5:3)। जो कोई यह कहता है, मैं उसे जान बया हूँ, और उसकी आज्ञाओं को (आनंद से) नहीं मानता, वह झूठा है औ उसमें सत्य नहीं। (1 यूहन्ना 2:4)। प्रेम करनेवाला - निर्भय होकर - आज्ञा पालन में उत्साह दिखाएगा!

यदि तुम मुझसे प्रेम करोगे तो मेरी आज्ञाओं को भी मानोगे, यह सच है। किन्तु व्यवहारिक रूप से इसमें कुछ कठिनाई है! मुझे प्रभु से प्रेम है, हृदय की सच्चाई और गहराई से प्रेम है। मैं हृदय की सच्चाई के साथ प्रभु की आज्ञाओं का पालन करना चाहता हूँ। भय से नहीं, प्रेम से ही...। किन्तु परमेश्वर की आज्ञाओं में से कई आज्ञाएँ अब तक मैंने व्यवहारिक जीवन में उतार नहीं पाया हूँ। ऐसा नहीं कि मैं नहीं चाहता हूँ, परन्तु यह मुझ से संभव नहीं हो पाता! मेरी हार्दिक इच्छा है कि एक भी आज्ञा - मेरे प्रति परमेश्वर की इच्छा - पूरा हुए बिना नहीं रहना है, फिर भी मुझमें परमेश्वर की इच्छा की पूर्णता प्रगट नहीं हो रही है। यह कहने भर से क्या होगा कि प्रेम है? शक्ति भी तो चाहिए।

यह कई सच्चे लोगों को परेशान करने वाला सवाल है। वचन का पूर्ण अनुसरण करने की शक्ति उनमें नहीं होती है।

आपका उत्तर होगा कि "हमारी कमजोरी तो प्रभु जानता है।" ठीक है, किन्तु जैसा कि हममें से कई लोग सोचते हैं, प्रभु एक समझौते के लिये तैयार नहीं होता है। प्रभु यह नहीं कहता है कि "बेटा, कोई बात नहीं, कम से कम तू चाहता तो है, बस इतना काफी है।" प्रभु पूर्ण आज्ञा पालन चाहता है। तब क्या करेंगे?

क्या प्रभु, अपने प्रेम करने वाले और मुझ जैसे कमजोर व्यक्ति पर क्या प्रभु इतना बड़ा बोझ रखेगा?

यह भी नहीं। प्रभु कुछ और ही बात कहता है।

"यदि तुम मुझसे प्रेम रखते हो, तो मेरी आज्ञाओं को मानोगे। किन्तु कई बार स्वयं की शक्ति से आज्ञापालन करना तुम्हारे लिए यह असंभव होगा। मैं ऐसा नहीं चाहता हूँ। इसलिय मैं पिता से बिनती करूँगा, और वह तुम्हें एक और सहायक देगा कि वह सर्वदा तुम्हारे साथ रहे।" (यूहन्ना 14:15,16)। आज्ञाओं के पूर्ण पालन में यह सहायक तुम्हारी सहायता करेगा।

जिस परिच्छेद में लिखा है कि प्रेम करनेवाला आज्ञाओं का पालन भी करेगा, उसी परिच्छेद में सत्य का आत्मा नामक एक और सहायक के आने का वर्णन किया गया है। इस पर ध्यान दीजिए। केवल यही नहीं, इन दोनों बातों को 'इसलिये' शब्द से जोड़ा गया है। इसका अर्थ क्या है? क्या यह नहीं कि आज्ञाओं का पालन करने, वचन पर चलने में हमारी सहायता करने के लिये पवित्र आत्मा आता है?

केवल कलीसिया के परम्परागत उपदेशों का पालन मात्र ही नहीं, वचन के अक्षरों से परे आत्मा में, और सभी सत्य की ओर पवित्र आत्मा हमें ले चलेगा। जहाँ हम स्वयं नहीं जा सकते वहाँ पवित्रात्मा हमारा हाथ पकड़ कर ले चलेगा।

इसके लिये आत्मा किस प्रकार हमारी सहायता करता है? हमारे साथ चलते हुये, हममें रहते हुये....। पवित्रात्मा के साथ निवास करना ही हमें वचन का पालन करने के योग्य बनाता है।

आज हम भय के कारण नहीं, परन्तु प्रेम के कारण वचन का पालन करते हैं। आज हम पर यह भय हावी नहीं हो रहा होता है कि कहीं हमें घर से निकाल न दे। बल्कि यह बोध कि मैं पुत्र हूँ।

मैं प्रभु से प्रेम करता हूँ; उसकी आज्ञाओं का मैं पालन करता हूँ, किन्तु यदि मैं स्वयं की शक्ति में उसकी आज्ञा का पालन करने का प्रयास करूँ तो यह एक बहुत बड़ी पराजय होगी। मैं बलहीन हूँ। प्रभु भी जानता है कि मैं बलहीन हूँ। उसने कहा, "आत्मा तुम्हारी सहायता करेगा। वह तुम्हें मार्ग बतलाएगा। तुम्हारे साथ चलते हुये, तुम में बसते हुये वह तुम्हें शक्ति देगा।" स्वयं की शक्ति से, अपनी इच्छा शक्ति से आज्ञापालन का परिश्रम करना मैं ने छोड़ दिया है। उसने आत्मा तो दी है, फिर मैं क्यों इतना बड़ा बोझ ढ़ोकर पराजित होऊँ ।

आत्मा मुझे ले चलने लगा। मेरे गिरने पर उसने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उठाया। जब मैं थक गया तो उसने मुझे सहारा दिया। जब मैं टूट गया तो उसने मेरे पास बैठकर मुझे सांत्वना दी। फिर मैं चलने लगा,... सत्य की गहराइयों की ओर...। वचन के अक्षरों से परे मैं अधिकाधिक सत्य की ओर मैं ले जाया जाने लगा। तब उसके पार जाने की शक्ति भी उसने मुझे दी है...मुझ ही में निवास करते हुये।

समाप्त नहीं हुआ। मैं चल रहा हूँ। अधिकाधिक सत्यों की ओर...।

15 जागृति का वातावरण

"जहाँ - जहाँ कलीसिया बाइबल के सत्यों की ओर लौट जाती और नया नियम की जीवनचर्या को लोग अपना लेते हैं, वहाँ - वहाँ परमेश्वर जागृति भेजेगा।"

उपरोक्त बातें "इव्हेन्जलिकल अवैकनिंग्स्" नामक अपनी पुस्तक श्रृंखला के प्रस्तावना में विश्व प्रसिद्ध जागृति इतिहासकार एड्विन ओर ने लिखा था। उपरोक्त बातें संसार की लगभग सभी जागृतियों के इतिहास को अपनी लेखनी से कलमबद्ध करने वाले इस इतिहासकार ने विस्तृत शोध और विश्लेषण के पश्चात् कही हैं।

यहूदिया के राजा योशिय्याह के दिनों की जागृति पुराना नियम की सबसे बड़ी सामूहिक जागृति के रूप में जाना जाता है (2 राजा 22 और 23 अध्याय; 2 इतिहास 34 और 35 अध्यायों में योशिय्याह की जागृति के विषय में विस्तृत वर्णन दिया गया है। उसे एक बार पूरा पढ़ लें)।

योशिय्याह राजा ने आठ वर्ष की उम्र में राज करना प्रारंभ किया था। अपनी जवानी के दिनों में ही उसने यहोवा की खोज करना प्रारंभ किया था (2 इतिहास 34:3)। छब्बीस वर्ष की उम्र में उसे मन्दिर के पुनर्निमाण की इच्छा हुई। यहीं से सब कुछ का प्रार्दुभाव हुआ।

यहोवा के भवन से व्यवस्था की पुस्तक खोज निकाली गई। सम्भव है कि यह दीवार में ईटों के बीच में सुरक्षित रखी गई पुस्तकें रही हों। कुछ भी हो, पुस्तक राजा

के हाथ में आया। सचिव शापान ने राजा को पुस्तक पढ़कर सुनाई।

व्यवस्था की पुस्तक के शब्दों को सुनकर राजा ने अपने वस्त्र फाड़े। "अरे, इस पुस्तक में तो हमसे संबन्धित बातें लिखी हुई थी। हमारे लिये लिखी पुस्तक पहले हमें क्यों नहीं मिली। राजा ने विलाप किया" (2 राजा 22:13)।

वचन की व्याख्या और उसकी आत्मा की खोज के लिये राजा ने भविष्यद्वक्ताओं की खोज की। एक साधारण से - व्यक्ति से परमेश्वर ने बात की...महल में कपड़े सिलने वाले व्यक्ति की पत्नी हुल्दा नबिया से।

भविष्यद्वक्तिन ने कहा,"....यह न्याय का सन्देश है" (2 राजा 22:16,17)। किन्तु चूँकि राजा ने वचन के सन्मुख अपने आपको दीन करके पश्चाताप् किया (18,19 पद) इसलिये परमेश्वर उसे पुनः स्थापित करेगा (पद 20)।

राजा ने सारी प्रजा को इकट्ठा किया, फिर सबको वचन पढ़कर सुनाया। उसके पश्चात् उसने कहा, "यह परमेश्वर के भवन से प्राप्त वचन है। जब मैंने इसे पढ़ा तो मेरा हृदय टूट गया। मैं ने वचन के विषय में परमेश्वर की इच्छा खोजी। यह न्याय का सन्देश है।" यहोवा का कहना यह है, हमने यहोवा का त्याग कर पराये देवताओं के लिये धूप जलाया और अपनी बनाई हुई सब वस्तुओं के द्वारा उसे क्रोध दिलाया है, इस कारण उसकी जलजलाहट हम पर भड़केगी और फिर शांत न होगी (2 राजा 22:17,18)। इसलिये हे प्रजा के लोगों, एक पश्चाताप और वापसी अवश्यंभावी है। मैं इसके लिये पहला कदम उठाऊँगा।

"मैं यहोवा के पीछे पीछे चलूँगा, और अपने सारे मन और सारे प्राण से उसकी आज्ञाएँ, चितौनियाँ, और विधियों का नित पालन किया करूँगा, और इस वाचा की बातों को जो इस पुस्तक में लिखी हैं पूरी करूँगा; मैं इस प्रकार की वाचा बाँधता हूँ तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या है?

लोगों ने कहा: हम भी इस वाचा में शामिल होते हैं।" (2 राजा 23 :1-3)

यह जागृति का आरंभ था। जिस बाल, अशेरा और आकाश की रानी की मूर्तियों को उन्होंने यहोवा के भवन में प्रतिष्ठित किया था, उसे उखाड़कर उन्होंने किद्रोन ले जाकर आग के हवाले कर दिया। योशिय्याह के पितरों ने जिन देवी देवताओं को स्थापित किया था, उन स्थानों को उन्होंने नष्ट कर दिया। उनके लिये धूप जलानेवालों को दूर कर उन्होने देवालय की गलत शिक्षाओं और वेश्याओं को

वहाँ से भगा दिया। उनके घरों को उसने जमीन पर ला दिया। यहूदिया और इस्राएल की सभी मूर्तियों को उसने मिटा डाला...एक संहार यात्रा!! (2 राजा 23:4-20 तक के लंबे वर्णन में जागृति के प्रारंभिक कदम के रूप में केवल मूर्तियों के दूर किये जाने का वर्णन दिया गया है)।

उसके पश्चात् योशिय्याह ने "व्यवस्था की पुस्तक में जैसा लिखा था, वैसा ही" एक विशाल फसह का पर्व मनाया (2 इतिहास 35:1)। शुद्धिकरण के पश्चात् आराधनालय गया, इस प्रकार का फसह का पर्व इस्राएल के इतिहास में कभी मनाया नहीं गया था (2 राजा 23:25)। अगला कदम यहोवा के भवन की सभी गतिविधियों को व्यवस्थित करना था (2 इतिहास 35:16)। इस प्रकार के सभी परिवर्तनों के द्वारा योशिय्याह राजा ने देवालय को पुनःस्थापित किया (2 इतिहास 35:20)।

जागृति का मार्ग देखिये।

युवा योशिय्याह - वह राजा भी है - यहोवा की खोज करता है। भवन निर्माण की उसे इच्छा है। जब योशिय्याह ने परमेश्वर की खोज की तब परमेश्वर - अपने वचन में से होकर - उसकी खोज में निकल पड़ा। वचन ने उसको आर पार छेद दिया। उसने न केवल यह जाना कि वचन उसके लिये है किन्तु उसने यह भी जाना कि उसकी व्याख्या और विश्लेषण आवश्यक है। उसने एक साधारण युवती से - अपने भण्डार गृह के रखवाले की पत्नी से - परमेश्वर का सन्देश प्राप्त करने की नम्रता दिखाई। वह ईश्वरीय न्याय के विषय में कायल हुआ।

जागृति फूट पड़ी। उसने राजा को प्रभावित किया। वह लोगों में अभी फैला नहीं है। लोगों को जागृत होना है किन्तु जागृति की आज्ञा नहीं दी जा सकती। लोगों की जागृति के लिये जन नायकों की आज्ञा काफी नहीं है। राजा जानता है कि उसे जागृत करने वाला वचन है। वचन लोगों में पहुंचता है। जागृति का मार्ग यही है।

राजा ने लोगों को इकट्ठा किया। सभी निवासियों को। उनके सन्मुख अपनी गवाही दी। वचन ने मुझे परिवर्तित कर दिया। मैं जागृत हुआ। मैं परमेश्वर के साथ वाचा बाँधता हूँ। मैं वचन का पालन करूँगा। आप लोग क्या निर्णय लेते हैं?

वचन लोगों को भी स्पर्श करना प्रारंभ किया। लोगों ने कहा, हम भी इस वाचा में सामिल होते हैं। हम भी वचन का पालन करेंगे।

वचन का पालन करने की वाचा बांधा गया है। वचन का अनुसरण करना ही जागृति है। गीत गाने से जागृति नहीं आती है। लोगों को वाचा बाँधनी होगी। वाचा

परमेश्वर के कार्यों को स्वीकार करने के लिये एक अनिवार्य घटक है। परमेश्वर ने नूह के साथ वाचा बाँधी। अब्राहम के साथ वाचा बाँधा। सीनै पर्वत पर इस्राएल की सन्तानों के साथ वाचा बाँधी। वाचा का लहू बहा कर यीशु ने अपनी दुल्हन के साथ वाचा बाँधा।

वाचा के लोगों को भिन्न होना ही होगा। वे पवित्र जन हैं। अलग किये हुये लोग हैं। अब अशुद्धि से काम नहीं चलेगा। वाचा की जीवन अनिवार्य है।

योशिय्याह ने शुद्धिकरण आरंभ किया। उसने राज्यभर यात्राएँ की। सभी मूर्तियाँ नाश हुईं। सभी ऊँचे स्थान उजड़ गये। उसकी आज्ञा मात्र से यह कार्य हो सकता था। परन्तु ऐसा करता तो पूजा स्थल सड़क से उठकर घर में आ जाते। परिवार के मुखिया या कलीसिया के अगुवे की आज्ञा से जागृति नहीं आ सकती है। इससे पवित्रीकरण भी नहीं हो सकता है। आज्ञा के भय से अगर गलियों में अपवित्रता नहीं दिखा सकते तो भी अपवित्रता हमारे मनों और हृदयों से बाहर नहीं गई होती है।

शुद्धिकरण के बाद फसह की आराधना होती है! राजा चाहे तो पहले ही फसह की आराधना प्रारंभ कर सकता था किन्तु शुद्धिकरण के बिना फसह अर्थहीन है। लोगों को इक्ट्ठा कर आराधना करने से जागृति नहीं आएगी। सबसे पहले शुद्धिकरण होना है।

शुद्धिकरण करने वाला कौन या क्या है? वचन!

"तुम तो उस वचन के कारण जो मैं ने तुम से कहा है, शुद्ध हो" (यूहन्ना 15:3)।

वचन से शुद्धिकरण होता है। महायाजकीय प्रार्थना में भी प्रभु ने यही कहा है। "सत्य के द्वारा उन्हें पवित्र कर: तेरा वचन सत्य है" (यूहन्ना 17:17)।

शुद्धिकरण कैसे होता है? क्या कुछ देर बैठकर रोने से? नहीं, कभी नहीं। मकान बनाते समय यदि ईंट बाहर की ओर निकले तो क्या करेंगे? तो क्या उसे पानी मारकर धोते हैं? नहीं। साहुल पकड़कर बाहर की ओर निकले ईंट को तोड़ दिया जाता है। यही शुद्धिकरण है। वचन रूपी साहुल से बाहर रहनेवाली इच्छाएँ और व्यसनों को तोड़ देना है। मुरझाई हुई शाखाओं को काट कर साफ करना है (यूहन्ना 15:2)।

आराधना के समाप्त होने पर सेवायें व्यवस्थित हो गईं। मन्दिर पुनःस्थापित किया गया।

आदर्श जागृति। है न? किन्तु योशिय्याह के हृदय की व्याकुलता वचन की प्राप्ति में पहुंचने से ही जागृति का मार्ग खुला था। फिर वचन ने अपना काम किया। वचन

ने लोगों को वाचा के बन्धन की ओर ले गया। शुद्धिकरण की ओर लाया, पुनःस्थापन की ओर लाया...।

सभी वास्तविक जागृतियों में वचन कार्य करता है। बन्धुवाई के दिनों में दानिय्येल ने यिर्मयाह भविष्यद्धक्ता की पुस्तक से जाना कि सत्तर वर्ष तक बन्धुवाई होगी। यरूशलेम के पुनरुद्धार के लिये उपवास करने और कार्य करने के लिये दानिय्येल को इसी बात से प्रेरणा मिली (दानिय्येल 9वां अध्याय)।

नहेम्याह की पुस्तक में दर्शाया गया है कि बन्धुवाई से लौटने के बाद लोग व्यवस्था सुनने के लिये व्याकुलता के साथ बैठे हुए हैं। यहोवा की व्यवस्था की बातों को सुनकर वे रोने लगे। उन्होंने पश्चाताप् किया, वे आनन्द मनाए। उन्होने घरों को छोड़ कर तम्बुओं का निर्माण किया और उसमें रहते हुये वचन सुना (नहेम्याह 17,18)। बन्धुवाई से पहले के लोगों से भी अधिक तीक्ष्णता के साथ बन्धुवाई के बाद के लोगों का एक सत्य विश्वास और भक्ति में बढ़ने का कारण एज्रा शास्त्री और बाद के नबियों द्वारा वचन उपलब्ध कराने के अलावा और कुछ नहीं है। सीरिया के सताव के दौरान प्रबल भविष्यद्धक्ताओं के अभाव में भी यहूदियों ने अपनी भक्ति को मजबूती से थामे रखा इसे हमें स्मरण करना है - यह वचन की शक्ति के अलावा और कुछ नहीं था।

नया नियम में लोग यीशु के वचन के लिये भूख प्यास भूलकर बैठे रहते थे। पिन्तेकुस्त के दिन उपदेश सुनकर या अन्य भाषा बोलने के कारण नहीं बल्कि पतरस का प्रवचन-वचन सुनने के कारण हृदय में कायल होने से लोग यीशु के अनुयायी बने थे। कुरनेलियुस के भवन में वचन सुनने वालों पर पवित्र आत्मा आया।

क्या कलीसिया के इतिहास में, नवीनीकरण का कारण विलियम टिण्डेल जैसे लोगों द्वारा वचन साधारण लोगों को उपलब्ध कराने का प्रयास नहीं था? मार्टिन लूथर और ज़्विन्गली की नवजागृति ने जनसाधारण तक बाइबल पहुंचाया। इसी कारण तो वह आज तक बना हुआ है।

ग्रेट अवेकनिंग के दिन की बातें यदि आज भी हमारे स्मृति पटल पर वर्तमान हैं तो क्या उसका कारण जोनाथन एड्वर्ड के वचन आधारित प्रवचन नहीं हैं? क्या जॉन वेस्ली ने मेथडिस्टवाद को सम्पूर्ण यूरोप में वचन को लोगों में पहुंचाकर नहीं फैलाया? इवेंन्जलिकल अवैकनिंग का अमेरिकी कार्यकर्ता जॉर्ज व्हाईटफील्ड आज भी अपने प्रवचनों में वचन आधारित शुद्धिकरण के आव्हान के लिये जाने जाते हैं।

पिन्तेकुस्त जागृति की अग्रगामी होलिनेस मूवमेंट भी उस पवित्रता के लिए खड़ा रहा जिसकी मांग वचन करता है। क्या पिन्तुकुस्त की जागृति का कारण भी अंतिम दिनों के विषय अध्ययन, सब पर बहने वाली अग्नि की बाट जोहने के लिए कुछ लोगों को प्ररित करने जैसी बातों का परिणाम नहीं हैं?

ये सब तो जागृति आने के मार्ग हैं। वचन से ही जागृति बनी भी रहती है। एडविन ओर के शब्दों में, यदि कलीसिया वचन की सच्चाईयों की ओर लौट जाये और लोग नया नियम की जीवनचर्या को अपना लें तो जागृति आयेगी। किन्तु यदि जागृत कलीसिया वचन में बनी रहे तो नया नियम की जीवनचर्या पुनःस्थापित भी हो जायेगी।

वचन के आधार पर होने वाली जागृति लोगों को ईश्वर के साथ वाचा के संबंध की ओर ऊँचा उठाती है! उन्हे शुद्ध करता, व्यवस्थित करता, पुनःस्थापित करता है। वास्तविक आत्मिक जागृति में परमेश्वर का राज्य धरती पर उतर आता है।

हमारे हृदय एक वचनाधारित जागृति की लालसा से भर जायें। मत भूलिये कि उसका वातावरण वचन है। परमेश्वर उसे भेजेगा। निश्चय ही!